ज्योति शिखा

अंक: २६वां सितम्बर १९७२

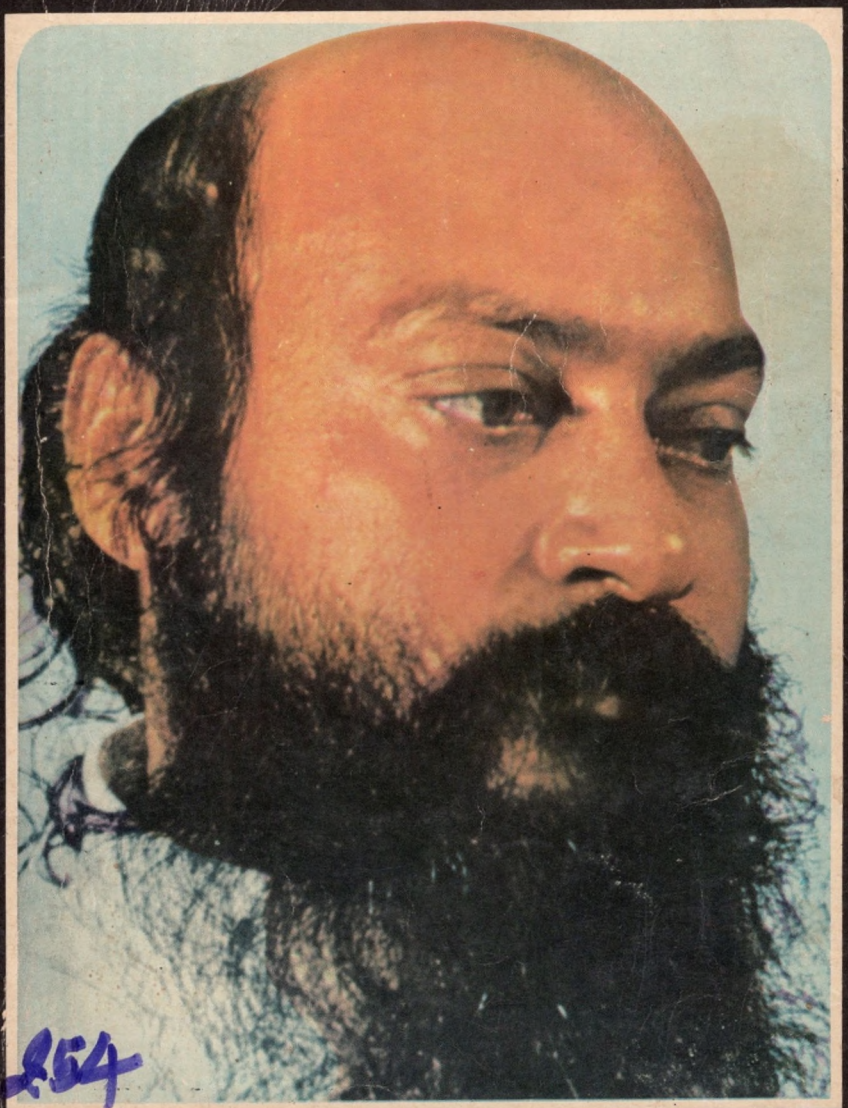

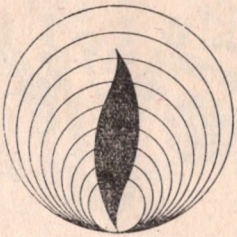

ज्योति शिखा

भगवान श्री रजनीश की अमृतवाणी का त्रैमासिक संकलन

सम्पादक :

मा योग क्रांति

स्वामी कृष्ण कबीर

वर्ष : ७ वाँ, अंक २ : सितम्बर १९७२

आवरण सज्जा : **अर्हत**

वार्षिक शुल्क : रुपये ८–००, एक प्रति : रु. २.००

प्रकाशक :

मंत्री, **जीवन जागृति केंद्र**, ३१, इजरायल मोहल्ला, भगवान भुवन, मस्जिद बन्दर रोड, बम्बई–९ फोन नं. ३२१०८५–३२७६१८

मुद्रक :

दि स्टेट पीपल प्रेस, जन्मभूमि भवन, घोगा स्ट्रीट, मुंबई-१.

अनुक्रम

१. रहनुमां भगवान श्री रजनीश को जानिब	स्वामी दिनेश भारती.	३
२. मैं तो सदा का ही अकेला हूँ		५
३. ताओकी रहस्यमयी विशेषता: अनुपस्थित उपस्थिति	स्वामी आनंद मैत्रेय	७
४. नर्य भारत की ओर	स्वामी कृष्ण सरस्वती	४१
• ओ चितेरे	श्री देवेन्द्रकुमार जैन	७१
५. प्रभु के साथ प्रश्नोत्तर !	श्री नंद किशोर	७३
• कुछ शेर सुनाता हूँ मैं	स्वामी कृष्ण कबीर	८०
६. भाव-जगत के सान्निध्य में कुछ क्षण		८१
• आओ तुम्हे लयला बना दे	स्वामी कृष्ण कबीर	८८
७. हम, आप और मुल्ला नसरुद्दीन	मा योग क्रांति	८९
८. जब कभी परमात्मा लिखता है	स्वामी राममूर्ति भारती	९४
९. श्रद्धांजलि–(स्व. मा योग भगवती)–	श्री चंद्रकान्त मकीम	१०१

रहनुमां भगवान श्री रजनीश की जानिब

मिलती है तेरे कदमों में हमे मोहब्बत बेशुमार [1]
झुकता है सर अपना इबादत [2] में तेरी बार-बार
इन्साँ के पैरहन [3] में जन्नत [4] के फरिश्ते हो तुम
आदम के कलेजे में छुपी मोहब्बत के रिश्ते हो तुम
जहन्नुम [5]-सी इस दुनिया को फिरदोस [6] बनानेवाले
बेहोश-सी इस दुनिया को फिर होश में लानेवाले
करता हूं मैं सजदा [7] तेरी चौखट [8] पै सौ बार
करता हूं रुह-औ-जिस्म, [9] तुझ पे मैं निसार [10]
तेरे आने से मेरे मन के वीराने में बहार आई है
पतझड़-से इस सूने जीवन में सावन की फुहार आई है
तेरी पाक़ [11] जुबाँ पर आकर 'गीता' ने ली अंगड़ाई है
कुरआन–औ-बाइबिल की मुकद्दर [12] तूने चमकाई है

– स्वामी दिनेश भारती –

१– सीमा रहित २– पूजा ३– पोशाक ४– स्वर्ग ५– नरक ६– स्वर्ग ७– नमन ८– घर (बुडलैन्डस्) ९– शरीर और आत्मा १०– न्यौछावर ११– पवित्र १२– भाग्य

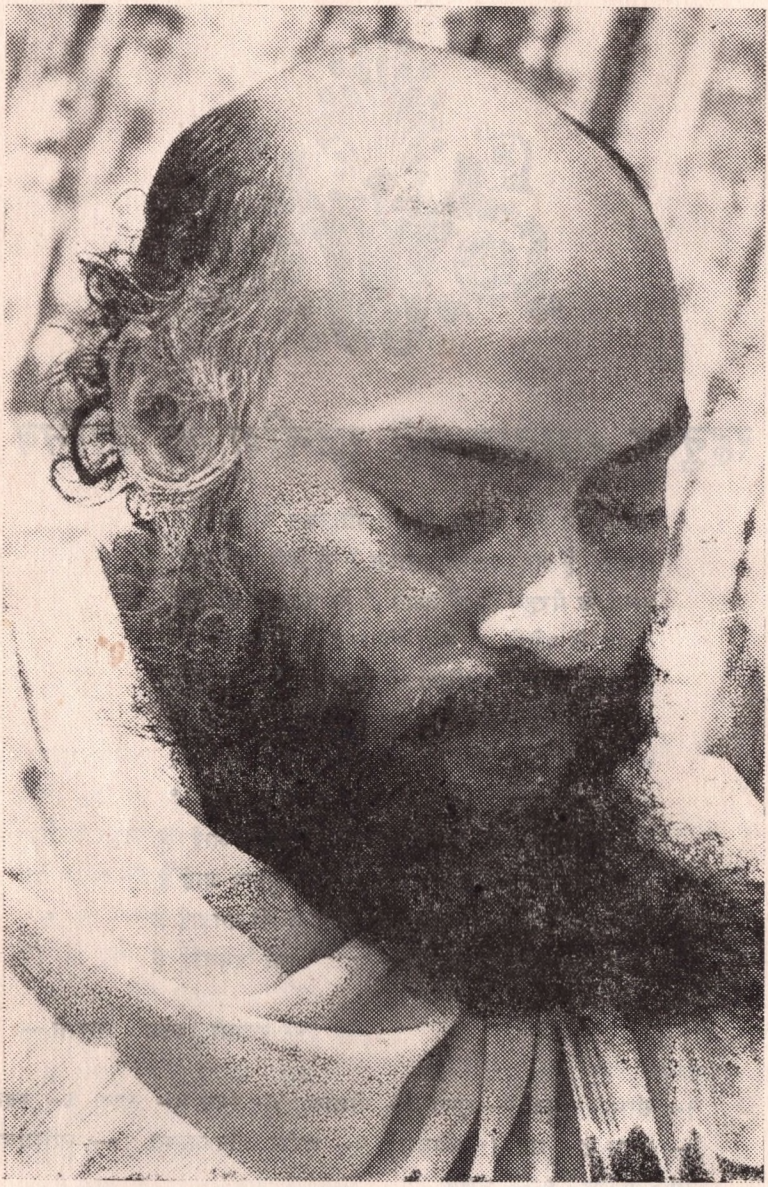

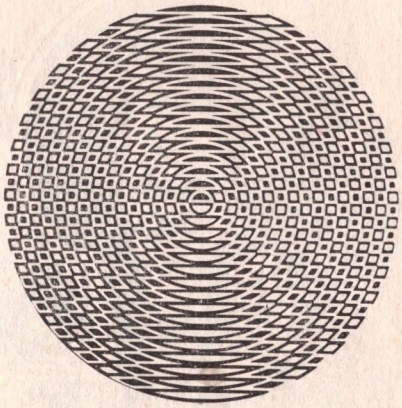

मैं तो सदा का ही अकेला हूँ....

• भगवान श्री

एक फकीर बहुत अकेला था। स्वप्न में उसे परमात्मा के दर्शन हुए तो उसने पाया कि परमात्मा तो उससे भी अकेला है। निश्चय ही वह बहुत हैरान हुआ और उसने भगवान से पूछा: "क्या आप भी इतने अकेले हैं? लेकिन आपके तो इतने भक्त है, वे सब कहाँ है?"

यह सुन भगवानने उससे कहा था : "मैं तो सदा से अकेला ही हूँ और इसलिये ही जो नितान्त अकेले हो जाते हैं वे ही केवल मेरा अनुभव कर पाते हैं। रही भक्तों और तथाकथित धार्मिकों की बात, सो वे मेरे साथ कब थे? उनमें से कोई राम के साथ है, कोई कृष्ण के, कोई मुहम्मद के और कोई महावीर के। उनमें मेरे साथ तो कोई भी नहीं है। **मैं तो सदा का ही अकेला हूँ। और इसलिये जो किसी के भी साथ नहीं है..... बस अकेला ही है, वही केवल मेरे साथ है।**'

—भगवान श्री

ताओ की रहस्यमयी विशेषताः अनुपस्थित उपस्थिति

संकलन : स्वामी आनंद मैत्रेय

(लाओत्से रचित "ताओ-तेह-किंग" नामक सूत्रों पर भगवान श्री रजनीश द्वारा दिनांक १ फरवरी, १९७२ को दिया गया एक प्रवचन !)

सूत्र : ताओ सभी पदार्थों को जन्म देता है और भरण-पोषण करता है, वह उनका जन्मदाता है, फिर भी अपने मालिक होने का दावा नहीं करता;

वह सब कुछ करता है, फिर भी उसे ऐसा करने का दम्भ नहीं है; वह सभी वस्तुओं का सर्वेसर्वा (अध्यक्ष) है, फिर भी उन्हें नियंत्रित नहीं करता ।

इसे ही ताओ की रहस्यामयी विशेषता कहते हैं ।

भगवान श्री :

अस्तित्व में जो जितना ही सूक्ष्म है, वह उतना ही अदृश्य है । जो जितना स्थूल है, वह उतना दृश्य है। जो दिखाई पड़ता है, वह उथला है; जो नहीं दिखाई पड़ता है, वही गहरा है। इसलिए जो लोग परमात्मा को देखने निकल पड़ते हैं, वे बुनियादी भूल में पड़ जाते हैं । ईश्वर, दरअसल में शब्द ही असंगत है। जो दिखाई पड़ सकता है, वह ईश्वर नहीं हो सकता । जो दिखाई पड़ जाए **वह दिखाई पड़ जाने के कारण ही ईश्वर नहीं रह जाएगा ।**

आँख जिसे देख सकती है, वह पदार्थ है। हाथ जिसे छू सकते हैं, वह पदार्थ है। कान जिसे सुन सकते हैं, वह पदार्थ है। मन जिसे जान सकता है, वह पदार्थ है, असल में हम जिसे भी जान लेते है, **उसकी सीमा, आकार और रूप बन जाता है।** हमारे सारे जानने के पार भी जो सदा शेष रह जाता है, हम जिसे स्पर्श करना भी चाहें, हम जिसे देखना भी चाहें, तो देख भी नहीं पाते, और फिर भी हम नहीं कह सकते कि वह वह नहीं है, **उसका नाम ही परमात्मा है।**

परमात्मा का स्वभाव प्रेम जैसा है

तो तीन बातें हैं। एक, जो दिखाई पड़ता है, वह है। इन्द्रियां जिसका अनुभव करती हैं, वह है। प्रत्यक्ष का यही अर्थ है कि जो आंखों के सामने है। उसे ही हम कह सकते हैं कि वह सत्य है, यथार्थ है। जिसे हम नहीं देख पाते हैं, जिसे हम नहीं छू पाते हैं, स्वभावतः हमारा मन कहता है, वह नहीं है। क्योंकि होता, तो हम देख पाते, छू पाते, जान पाते। तो दूसरी कोटि है, जो नहीं है। उसे हम देख भी नहीं पाते हैं, छू भी नहीं पाते हैं, जान भी नहीं पाते। **अगर ये दो ही कोटियां हैं अस्तित्व की, तो परमात्मा की कोई भी जगह नहीं है, तो धर्म का कोई उपाय नहीं है, तो आत्मा का कोई अस्तित्व नहीं है। तब तो प्रेम की भी कोई संभावना नहीं।** और तब सब प्रार्थनाएं झूठी हैं। लेकिन एक तीसरी केटेगरी भी है, तीसरी कोटि भी है। दो की बात मैंने कहीं। एक, जिसे हम देख पाते हैं, छूपाते समझ पाते है, वह है। दूसरी, जो नहीं है: उसे हम देख नहीं पाते समझ नहीं पाते, छू नहीं पाते। इन दोनों से अलग एक कोटि और भी है, जो है, लेकिन जिसे हम छू नहीं पाते, समझ नहीं पाते, स्पर्श नहीं कर पाते और फिर भी उसे हम इंकार नहीं कर पाते हैं। यह तीसरी कोटि ही ईश्वर है। **और लाओत्से इसी तीसरी कोटि को ताओ कहता है।**

ताओ का अर्थ है धर्म, ताओ का अर्थ है नियम, ताओ का अर्थ है परम सत्ता का आधार, परम सत्ता, द अल्टीमेट रियलिटी। यह तीसरा है, **जिसे लाओत्से ताओ कह रहा है। चाहे ईश्वर कहें, चाहे आत्मा कहें, चाहे सत्य कहें, नाम हमारे दिये हुए हैं, नाम से कोई अंतर नहीं पड़ता है। बुद्ध ने इसे निर्वाण कहा है, शून्य कहा है।** बुद्ध ने चूंकि इसे शून्य कहा, न समझने वाले लोगों ने समझा कि बुद्ध कह रहे हैं कि **वह नहीं है।** अगर बुद्ध को

यही कहना होता कि वह नहीं है, तो शून्य भी कहने की जरूरत न थी। बुद्ध ने कहा : वह शून्य है; उसके होने को इंकार नहीं किया। नाम उसको शून्य का दिया। क्यों बुद्ध ने कहा शून्य ? दोनों ही बातें समाहित है शून्य में **शून्य है भी और नहीं भी है। वह कुछ ऐसा है, जैसे कि न हो। उसकी मौजूदगी गैरमौजूदगी जैसी है**। उसके होने में भी वह प्रगाढ़ होकर प्रकट नहीं होता है। उसका होना ठोस नहीं है। इसलिए जो बहुत ठोस ढंग से उसे पकड़ना चाहते हैं, वे वंचित रह जाते हैं। और जो इस आशा में घूमते रहते हैं कि हम किसी तरह जैसे और वस्तुओं को जानते हैं, उसी ढंग से उसे भी जान लें, तो वे उसे कभी भी नहीं जान पाते हैं। उसे जानने का ढंग ही बदलना होगा। इसे हम कुछ तरह से समझे।

मैं कहता हूं कि मेरे हृदय में आपके लिए प्रेम है। लेकिन मेरे हृदय को काटकर मेरे प्रेम को किसी भी तरह समझा नहीं जा सकता है। और जो मेरे हृदय को काटकर देखने चलेगा, वह इस नतीजे पर पहुंचेगा कि मैं झूठ बोल रहा था। क्योंकि उसे प्रेम कहीं मिलेगा नहीं। **प्रेम कोई वस्तु नहीं है, जिसे हम इस तरह खोज पाएं। प्रेम कोई पदार्थ नहीं है, जिसे प्रयोगशाला में पकड़ा जा सके और यंत्र जिसकी परीक्षा कर ले।** और अगर चिकित्सक सब तरह से जांच-पड़ताल करेगा, शरीरशास्त्री सब तरह से खोजेगा, तो और बहुत चीजें हाथ लगेंगी, जिनका शायद प्रेमी को पता भी नहीं था। हड्डियां, मांस-मज्जा, मांसपेशियां लगेंगी हाथ, फेफड़े लगेंगे हाथ, फुफ्फुस लगेगा हाथ, सब कुछ लगेगा, प्रेमी को जिनका पता भी नहीं था। जब उसने हृदय पर हाथ रख कर कहा था कि मेरा हृदय प्रेम से भरा है, तब जिस चीज को वह कह रहा है, वही भर शरीर-शास्त्री के हाथ नहीं लगेगी। और बहुत कुछ हाथ लगेगा, जिसका उसे पता भी नहीं है। और शरीरशास्त्री अपने टेबल पर फैला-कर रख देगा सब कुछ। लेकिन उसमें प्रेम कहीं भी नहीं होगा। निश्चित ही शरीरशास्त्री कहेगा कि प्रेम जैसी कोई भी बात नहीं है। यह आदमी या तो झूठ बोलता था या भ्रान्ति में था। दो ही उपाय हो सकते हैं। या तो वह जानकार झूठ बोल रहा था या अनजाने में झूठ बोल रहा था; क्योंकि स्वयं भ्रान्ति में पड़ गया था।

लेकिन एक आश्चर्य की बात है कि शरीरशास्त्री से अगर हम यह पूछें कि यह भी मान लिया जाए कि प्रेम नहीं था, भ्रान्ति थी, तो यह भ्रान्ति

भी तो तुम्हारी पकड़ में कहीं नहीं आती है, तो इसका उसके पास उत्तर नहीं है। माना कि यह आदमी प्रेम में नहीं था, भ्रान्ति में था, तो भ्रान्ति भी तो तुम्हारे टेबल पर कहीं पकड़ में नहीं आती है? या अगर यह आदमी भ्रान्ति में नहीं था, असत्य बोल रहा था, तो भी वह असत्य प्रेम, जो यह बोल रहा था, जो असत्य इसके भीतर घटित हो रहा था, वह भी तो तुम्हारे टेबल पर कहीं पकड़ में नहीं आता है। असल मे शरीरशास्त्री को कहना चाहिए कि यह आदमी था ही नहीं, जो बोल रहा था, क्योंकि वह आदमी ही कहीं पकड़ में नहीं आता है। और जहां पकड़ में आता है, वहां बोलनेवाला कोई भी नहीं है। लेकिन यह तो शरीरशास्त्री भी नहीं कह पायेगा, क्योंकि वह भी बोल रहा है।

तो प्रेम के लिए हमें कहना पड़ेगा कि प्रेम का अस्तित्व है, लेकिन वस्तुओं जैसा उसका अस्तित्व नहीं है। **भिन्न अस्तित्व है।** ए डिफेरेन्ट डायमेन्शन आफ एक्जिस्टेन्स। कोई दूसरा ही आयाम है प्रेम के अस्तित्व का। प्रेम होता है, लेकिन वस्तुओं जैसा नहीं होता है। **इसलिए ध्यान रखें, प्रेम है। उतना गहन होता है जितना अनपस्थित होता है,** और जितना उपस्थित हो जाता है, उतना क्षुद्र हो जाता है। जब कोई किसी से कहता है कि मैं तुम्हें प्रेम करता हूं, तब वह प्रेम को क्षुद्र किये दे रहा है। क्योंकि इतना कह कर भी हम प्रम को इन्द्रियों की पकड़ में ले आते हैं। कम से कम कान तो सुन लेते हैं। इसलिए बुद्ध जैसा व्यक्ति तो किसी से यह भी नही कहेगा कि मैं तुम्हें प्रेम करता हूँ। **क्योंकि यह कहना भी प्रेम की हत्या है।** अगर प्रेम है, तो उसे इतना भी उपस्थित करने की आवश्यकता नहीं है। और अगर वह है, तो अनुभव में आयेगा। और अगर वह उपस्थित हुए बिना अनुभव में नहीं आ सकता है, तो उसके अनुभव में आने का कोई प्रयोजन ही नहीं है।

लेकिन क्या कभी आपने ऐसा अनुभव किया है, कोई ऐसा प्रेम, जो कहा न गया हो, बोला न गया हो, प्रेमी ने आपका हाथ स्पर्श न किया हो, प्रेमी ने आपको गले से न लगाया हो, प्रेमी ने कोई उपाय ही न किया हो प्रेम के प्रकट करने का और अचानक आपने पाया हो कि किसी गंगा में आप नहा गये हैं, अचानक आप ने अनुभव किया हो कि कोई फूलों की वर्षा आप पर हो गई है। **अचानक आपने अनुभव किया हो कि कोई**

संगीत किसी अनजाने कोने से आपके भीतर बज उठा है। अंगुलियां नहीं हैं, लेकिन वीणा को किसी ने छेड़ दिया है। कोई पास नहीं आया, लेकिन कोई बिल्कुल अंतरतम में प्रवेश कर गया है. अगर ऐसा प्रेम आपने अनुभव किया हो एक क्षण को भी, तो लाओत्से जो कह रहा है, उसे समझने में आसानी हो जाएगी। क्योंकि परमात्मा का स्वभाव प्रेम जैसा है।

लेकिन अभागे हैं हम, क्योंकि हम प्रेम को ही नहीं जानते हैं और **जो प्रेम को नहीं जानता है, वह परमात्मा को कभी भी नहीं जान पायेगा। क्योंकि प्रेम उसकी ही हल्की किरण का अनुभव है – फिर परमात्मा उन्हीं किरणों का विराट जोड़ है, सूरज है।**

ताओ का अघोषित, मौन अस्तित्व

और लाओत्से का पहला सूत्र है: ताओ सभी को जन्म देता है और सभी का पोषण भी करता है, वह सबका जन्मदाता है, फिर भी वह उसको मालकियत का कोई दावा नहीं करता है। वह कोई मालिक नहीं है –

यह भ्रान्ति भी तो तुम्हारी पकड़ में नहीं आती है, प्रेम जितना अनपस्थित होता है, उतना गहन होता है। बुद्ध जैसा व्यक्ति तो किसी से यह भी नहीं कहेगा कि म तुम्हें प्रेम करता हूँ। क्योंकि यह कहना भी प्रेम की हत्या है।

मनुष्य की चेतना ने हजारों बार आकाश की तरफ हाथ उठाकर उसे धन्यवाद दिया है। मनुष्य की चेतना ने हजारों बार उसके चरणो में सिर रखा है। मनुष्य की चेतना में हजारों बार पुकार उठी है, अनुभव हुआ है, आस्था निर्मित हुई है। लेकिन परमात्मा की तरफ से कोई जवाब कभी नहीं दिया गया। मनुष्य कहता है, तुम हमारे पिता हो; लेकिन उसने कभी नहीं कहा कि तुम हमारे पुत्र हो। मनुष्य कहता है कि तुमने निर्माण किया, तुमने सृजन किया। उसने कभी घोषणा नहीं की, मैं निर्माता हूं, मैं दृष्टा हूं। **अघोषित, मौन उसका अस्तित्व है।** असल में इसे थोड़ा समझें।

जो भी दावा करता है, वह दावा करके ही कह देता है कि वह दावेदार नहीं है। अगर एक पिता को अपने बेटे से कहना पड़े कि मैं तुम्हारा पिता हूं, अगर एक प्रेमी को अपनी प्रेयसी से कहना पड़े कि मैं तुम्हारा प्रेमी हूं, अगर एक गुरू को अपने शिष्य से कहना पड़े कि आदर करो मेरा, मैं

तुम्हारा गुरू हूं, तो बात ही सब व्यर्थ हो गई । क्योंकि जिस दिन गुरू को कहना पड़े कि मैं तुम्हारा गुरू हूं, आदर करो, चरण छुओ मेरे, उसी दिन गुरुता खो गई । **असल में गुरुता जब खो जाती या होती ही नहीं है, तभी दावा होता है । इसलिए किसी गुरु ने कभी नहीं कहा है कि आदर करो । गुरू हम उसे कहते हैं, जिसे आदर दिया ही जाता है ।** जिसे कहना पड़े कि मुझे आदर करो, वह भी भली भांति जानता है कि गुरू नहीं है । एक विश्वविद्यालय में मैं था । और वहां शिक्षकों के एक सम्मेलन में किसी ने मुझ से पूछा कि गुरुओं का लोग आदर क्यों नहीं करते हैं ? आज का विद्यार्थी गुरू का आदर क्यों नहीं करता है ? तो मैंने कहा : गुरू है कहां ? क्योंकि गुरू का अर्थ ही होता है : वह जिसका लोग आदर करते हैं । जिसे आदर देना ही पड़ता है, जो मांगता नहीं, जिसे आदर मिलता है, **जिसकी तरफ आदर ऐसे ही बहता है, जैसे पानी सागर की तरफ बहता है ।**

किसी दिन सागर अगर कहने लगे कि नदियाँ अब मेरी तरफ क्यों नहीं बहती हैं, तो हमें सागर को कहना होगा कि तुम भ्रान्ति में हो, तुम कोई ताल-तालाब होओगे, सागर नहीं हो । क्योंकि सागर का मतलब ही इतना होता है कि जिसकी तरफ नदियाँ बनती है, जिसकी तरफ नदियों को बहना ही पड़ता है, **अन्यथा कोई गति नहीं है** । नदी का अस्तित्व ही सागर की तरफ बहने से निर्मित होता है । नदी बनती ही इसलिए है कि वह सागर की तरफ बहती है । अगर वह सागर की तरफ नहीं बहे, तो वह नदी बन नहीं सकती, हो ही नहीं सकती । जिस दिन सागर को कहना पड़े कि नदियों, मेरी तरफ बहो, उस दिन समझना कि वह सागर नहीं है । सागर को यह कहने की जरूरत नहीं पड़ती है । **उसका होना काफी है ।** गुरू की तरफ आदर बहता है । प्रेम की तरफ प्रेम बहता है । लेकिन यदि दावा करना पड़ता है, तो दावा करना ही इसलिए पड़ता है कि दावेदार मौजूद ही नहीं होता है यह उल्टा लगेगा, पैराडाक्सीकल लगेगा, लेकिन ऐसा ही है । जब भी आप दावा करें कि मैं प्रेम करता हूं तब भीतर टटोलना । प्रेम के धुएं की रेखा भी भीतर नहीं मिलेगी । **क्योंकि प्रेम अपने आप में काफी दावा है । उसका होना ही उसकी दावेदारी है ।** और अतिरिक्त दावा सिर्फ नपुंसकता की घोषणा करता है कि भीतर जिसकी हम चेष्टा कर रहे हैं बताने की, वह नहीं है । **परमात्मा दावा नहीं करता, क्योंकि वह दावेदार है ।**

नास्तिक दिदरो

पश्चिम में एक नास्तिक विचारक हुआ दिदरो। उसने एक सभा में एक दिन अपनी घड़ी ऊंची उठाकर कहा कि अगर परमात्मा कहीं है, तो एक छोटा–सा प्रमाण दे दें, तो मैं मान लूंगा। यह मेरी घड़ी चलती है, यह इसी वक्त बन्द हो जाए। इतना भी परमात्मा कर दे, क्योंकि तुम कहते हो कि उसने जगत को बनाया और तुम कहते हो वही निर्माता है और वही विनाशक है, वही बनानेवाला है और वही मिटानेवाला है। वह इतना छोटा– सा काम कर दे, यह घड़ी आदमी की बनाई हुई है, इसे बन्द कर दे इसी वक्त, तो सदा के लिए मैं उसके चरणों में गिर जाऊंगा। **जो आस्तिक थे उस सभा में, उन्होंने आकाश की तरफ प्रार्थना-भरी आंखों से देखा कि बन्द कर दे।** इतना छोटा–सा काम, यह घड़ी बन्द कर दे, तेरे हाथ में क्या नहीं है? तेरी कृपा हो जाए, तो लंगड़े पहाड़ चढ़ जाते हैं, अंधे देखने लगते हैं, मुर्दे जीवित हो जाते हैं। तेरे हाथ में क्या नहीं है? इतनी-सी बात है यह छोटी -सी घड़ी, इसे बन्द कर दे। लेकिन घड़ी बन्द नहीं हुई। और दिदरो उन आस्तिकों से जीत गया। **जीत गया इसलिए नहीं कि दिदरो की नास्तिकता सही थी, बल्कि इसलिए कि उन आस्तिकों की आस्तिकता ही सही नहीं थी।** वे परमात्मा से यह कह रहे थे कि तुम दिदरो के साथ प्रतिस्पर्धा में उत्तर जाओ। वे परमात्मा से यह कह रहे थे कि दावे का मौका है, क्यों छोड़ते हो, दावेदार हो जाओ, इतनी छोटी-सी बात करके दिखा दो।

लेकिन अगर दिदरो सच में बुद्धिमान होता या वे आस्तिक बुद्धिमान होते, तो वे समझ पाते। मुझे तो लगता है कि अगर परमात्मा जोश में आ जाता उस दिन **तो सदा के लिए, सदा के लिए अप्रमाणित हो जाता।** उस दिन अगर दिदरो की बातों में आ जाता और घड़ी बन्द कर देता, तो परमात्मा एकदम क्षुद्र हो जाता। **असल में दावा क्षुद्रता से आता है।** दिदरो को भी न सह सके परमात्मा, तो वह बहुत छोटा हो जाए। कहीं कुछ भी न हुआ। घड़ी चलती रही। और दिदरो जीत गया। और दिदरो जीवन भर यही सोचता रहा कि जो परमात्मा इतना–सा प्रमाण नहीं दे सकता है, उसका होना कैसे हो सकता है। क्योंकि हम मानते है कि प्रमाण ही होने का सबूत है।

लेकिन वस्तुतः जो चीज है, वह कभी प्रमाण नहीं देती। प्रमाण हम जुटाते ही इसलिए हैं कि संदेह होता है। अन्यथा हम प्रमाण नहीं जुटाते हैं। इसलिए तो जगत में जो परम आस्तिक हुए हैं, उन्होंने ईश्वर के लिए प्रमाण नहीं दिए हैं। और जिन्होंने

दिए हैं, वे अस्तिक नहीं थे। और जिन्होने प्रमाण दिये है और कहा हैं कि इसलिए परमात्मा है, इसलिए परमात्मा हैं। इसलिए परमात्मा है, जिन्होंने परमात्मा के होने को तर्क की एक निष्पत्ति, एक सिलोजिस्म बनाया है और जिन्होने कहा है कि जैसे गणित सिद्ध होता है, वैसे ही परमात्मा भी सिद्ध होता है। उनमें से कोई भी अस्तिक नहीं था। वे सभी नास्तिक थे, जो किसी तरह प्रमाण जुटाकर अपने को समझाने की कोशिश कर रहे थे कि परमात्मा है। लेकिन अगर उनके प्रमाण गलत हो जाएं, तो उनका परमात्मा भी गलत हो जाएगा। **यदि परमात्मा प्रमाणों पर निर्भर है, तो ध्यान रहे, प्रमाण परमात्मा से बड़े हो जाते हैं।**

आस्तिक तर्तुलियन

तर्तुलियन ने कहा है कि मै भरोसा करता हूं तुममें, क्योंकि तुमने कभी प्रमाण नहीं दिए। यह आदमी आस्तिक रहा होगा। तर्तुलियन ने कहा है कि मैं विश्वास करता हूं तुम में, क्योंकि तुम बिलकुल असंभव **मालूम पड़ते हो।** सब तरह से सोचता हूं, तो पाता हूं कि तुम नहीं हो सकते, इसलिए भरोसा करता हूं कि **तुम हो। क्योंकि अगर मेरे प्रमाणों से तुम हो सको, तो मैं तुमसे बड़ा हो जाता हूं।** अगर मेरे प्रमाण से परमात्मा सिद्ध हो जाए, तो मेरे ही प्रमाणों से असिद्ध भी हो जाएगा। अगर मेरी बुद्धि निर्णय कर सके कि परमात्मा है, तो फिर बुद्धि निर्णायक हो जाती है। तो वह यह भी निर्णय कर सकेगी कि परमात्मा नहीं है। तब मेरी बुद्धि बड़ी हो जाती है।

लाओत्से कहता है कि वह निर्माता है, सृष्टा है, पोषक है, लेकिन दावेदार नहीं है। उसने कभी घोषणा नहीं की कि मैं मालिक हूं। असल में वह इतना निश्चिन्त रूप से मालिक है, इतना आश्वस्त रूप से मालिक है कि घोषणा की जरूरत ही नहीं पड़ती। आपको मालकियत की घोषणा करनी पड़ती है, क्योंकि आप आश्वस्त नहीं है। रोज-रोज घोषणा करते हैं, तब अपने लिए आश्वासन जुटा पाते हैं। कभी आपने ख्याल किया कि जिस चीज के सम्बन्ध में आप आश्वस्त होते हैं, उसके सम्बन्ध में आप घोषणा नहीं करते हैं।

रामकृष्ण के पास विवेकानन्द गए और विवेकानन्द ने उनका हाथ पकड़ कर हिलाया और कहा कि मैं जानना चाहता हूं : क्या ईश्वर है ? विवेकानन्द और लोगों से भी पूछ चुके थे यही प्रश्न। तर्क देने वाले, विचारशील लोग मिले थे, जिन्होंने तर्क दिए और जिन्होंने कहा कि है, मैं सिद्ध करके बता सकता हूं। ज्ञानी मिले, जिन्होंने शास्त्र खोले और विवेकानन्द को कहा कि देखो, यह लिखा है कि है। लेकिन विवेकानन्द को आश्वासन नहीं मिला। **क्योंकि जिसका परमात्मा शास्त्र में छिपा हो, उसे**

असली परमात्मा का कोई भी पता नहीं है। और जिसका परमात्मा तर्क में छिपा हो, उसका परमात्मा कभी भी खंडित किया जा सकता है। क्योंकि तर्क दुधारी तलवार है। जिसका सहारा तर्क का होगा, तर्क के खिसकते ही वह बेसहारा होकर जमीन पर गिर जाएगा। **विवेकानन्द ने रामकृष्ण से भी पूछा है: क्या ईश्वर है? रामकृष्ण ने कहा कि बेकार की बात मत पूछो, यह पूछो कि तुम्हे देखना है, जानना है, मिलना है।** यह पहला मौका था कि **कोई आश्वस्त आदमी विवेकानन्द-के सामने है।** उसने यह नहीं कहा कि है, मैं सिद्ध कर दूंगा। मैं तुम्हे बताऊंगा कि है, समझाऊंगा कि है। उसने कहा कि तुम्हें मिलना हो, तो बोलो, हां या ना में जवाब दो।

क्या ईश्वर है? विवेकानन्द ने रामकृष्ण से भी पूछा है: क्या ईश्वर है? रामकृष्णने कहा कि बेकार की बात मत पूछो, यह पूछो कि तुम्हें देखना है, जानना है, मिलना है।

विवेकानन्द ने बाद में कहा कि मैंने यह प्रश्न पूछकर दूसरों को झिझक में डाल दिया था। रामकृष्ण ने मुझे ही झिझक में डाल दिया। क्योंकि मैंने अभी खुद ही तय नहीं किया था कि मैं उससे मिलने को राजी हूं। मैं तो कुतूहलवश पूछने चला गया था। तो विवेकानन्द ने कहा कि एक बात तय हो गई कि यह आदमी तर्क से नहीं जानता, किन्हीं प्रमाणों से नहीं जानता, **बस जानता है निपट, शुद्ध जानता है।** किसी कारण से भी नहीं, बस जानता है। और जानने में इतना आश्वस्त है कि दूसरे से भी कहता है कि तुम्हें जानना हो, तो बोलो। यह बात इतनी आसान मालूम पड़ रही है इस आदमी के लिए कि जैसे कोई कहे कि क्या बात करते हो कि सूरज है कि नहीं। मेरा हाथ पकड़ो और चलो, बाहर निकल आओ घर के और सूरज को देखो। इसकी चर्चा करनी ही फिजूल है कि सूरज है या नहीं, आओ, बाहर आओ और देख लो। इतनी सरलता से जो कह रहा है, इस कहने में एक गहन आश्वासन है। **और जहां आश्वासन है, वहां दावा नहीं है।** जहां आश्वासन नहीं है, वहां दावा है। और अगर परमात्मा भी आश्वस्त न हो, तो कौन आश्वस्त होगा? **इसलिए परमात्मा ने अब तक कोई दावा नहीं किया।**

लोग कहते हैं कि बाइबिल परमात्मा की किताब है और कुरान परमात्मा की किताब है और वेद परमात्मा की किताब है। लेकिन मैं आपसे कहता हूं कि **परमात्मा की कोई किताब नहीं है। सब किताबें उन आदमियों की है, जिन्होंने परमात्मा की झलक पाई है। क्योंकि परमात्मा यदि कोई किताब प्रकट करे, तो यह तभी हो सकता है, जब वह अपने में बहुत हीन अनुभव करता हो। और यदि परमात्मा घोषणा करे कि मैं हूं, तो यह तभी, जब उसे अपने होने पर शक हो।**

परमात्मा की कोई किताब नहीं है, क्योंकि परमात्मा का कोई वक्तव्य नहीं है। परमात्मा समझाना भी चाहे, तो किसे ? कहना भी चाहे, तो किसे ? मालिक भी बनना चाहे, तो किसका ? **मालिक वह है।** यह मालकियत इतनी स्वाभाविक है और इस मालकियत का कोई प्रतियोगी, प्रतिस्पर्धी भी तो नहीं है। यह घोषणा पागल परमात्मा ही कर सकता है कि मैं मालिक हूं। क्योंकि ध्यान रहे, **मालिक की घोषणा भी तभी करनी होती है, जब प्रतिस्पर्धी का डर हो।** एक पति अपनी पत्नी से कहता है कि मैं तेरा मालिक हूं। एक पत्नी अपने पति से कहती है कि मैं तेरी मालिक हूं, क्यों ? क्योंकि प्रतिस्पर्धी चारों ओर है और मालकियत छीनी जा सकती है। मालिक कोई भी हो सकता है। एक मकान पर आप दावा करते हैं, द्वार पर तख्ती लगाते हैं कि मकान मेरा है। क्योंकि इस मकान का दावा अगर आप चूक जाएं समय पर करने से, तो कोई और भी कर सकता है। लेकिन परमात्मा दावा भी किसके सामने करे ?

इसलिए लाओत्से कहता है कि वह अपने मालिक होने का दावा नहीं करता है। ताओ, परमात्मा या धर्म दावेदार नहीं है, क्योंकि उसका दावा सुनिश्चित है, स्वाभाविक है। वह है ही। वह सब कुछ करता है, फिर भी उसे ऐसा करने का कोई अहंकार नहीं है। जब भी हम कुछ करते हैं मजबूरी मे, जबरदस्ती में, चेष्टा से, तभी अहंकार निर्मित होता है। जब हम कुछ करते हैं सहज, स्वभाव से, तब अहंकार निर्मित नहीं होता है। बहुत से काम हम भी करते हैं, जिससे अहंकार निर्मित नहीं होता है : रात आप सोते हैं, दिन भर आप श्वास लेते हैं, लेकिन इससे अहंकार निर्मित नहीं होता है। आप घोषणा करके, छाती पीटकर, बाजार में खड़े होकर नहीं कहते कि आज मैंने इतनी हजार सांसें लीं। थोड़ी सांसें नहीं लेते, कई हजार लेते हैं। जीवन भर में अरबों सांसें लेते हैं। अगर हिसाब लगाएं, तो दावा कर सकते है कि मैंने इतनी सांसे ली थीं। बीस साल तो मैं सोया ही रहा साठ साल में फिर इतनी बार सुबह उठा, इतनी बार शाम सोया। नहीं इसका दावा हम नहीं करते, क्योंकि ये स्वाभाविक क्रियाएं हैं।

लेकिन, आदमी दावा करता है। एक रुपया भी उसके खींसे में हो, तो बस दावा करता है। करोड़ों हों, तो करता ही है। एक पैसा भी हो, तो भी करता है **हालांकि एक सांस के लिए करोडों रुपये देने को तैयार हो सकता है, लेकिन श्वास का दावा नहीं करता है।** अगर मरते हुए आदमी से हम कहें कि एक सांस और मिल सकती है, सारी संपत्ति दे दो, तो वह सारी संपत्ति दे देगा और एक सांस ले लेगा। लेकिन बड़ी हैरानी की बात है कि उस संपत्ति का उसने जीवन भर दावा किया

और इस श्वास का कभी दावा नहीं किया, यद्यपि उसने करोड़ों सांसें लीं हैं। श्वास **स्वभाव थी, इसलिए उसका दावा नहीं किया।** धन स्वभाव नहीं था, चेष्टा करके पाया गया था, इसलिए उसका दावा किया। जिसमें चेष्टा होती है, उसमें अहंकार निर्मित होता है। जहां चेष्टा नहीं होती, वहां अहंकार निर्मित नहीं होता है। **यह परमात्मा संसार को बना रहा है, अगर इसमें भी चेष्टा हो बैसे ही, जैसे हम धन को बनाते हैं, तो अहंकार निर्मित होगा।** लेकिन अगर यह निश्चेष्ट प्रक्रिया हो, जैसी स्वांस है तो दावे का प्रश्न नहीं उठता, अहंकार का प्रश्न नहीं उठता।

परमात्मा सर्जक नहीं नर्तक

इसलिए जो जानते हैं, वे कहना पसन्द नहीं करते कि परमात्मा ने संसार को बनाया। वे ऐसा ही कहना पसन्द करते हैं कि **परमात्मा ही संसार बन गया।** इतना भी फासला नहीं है कि वृक्ष ऊगते हैं, तो परमात्मा इन्हें बनाता है। ऐसा नहीं, परमात्मा वृक्षों में निर्मित होता और बनता है। आकाश में बादल चलते हैं, तो परमात्मा इन्हें चलाता है, ऐसा नहीं, परमात्मा ही इन बादलों में चलता और सरकता है। आदमी को परमात्मा बनाता है, ऐसा नहीं, परमात्मा ही आदमी बनता है। इसे हम इस तरह समझें।

एक चित्रकार है और वह एक चित्र बनाता है। तो बनाते ही चित्र अलग हो जाता है, चित्रकार अलग हो जाता है। लेकिन परमात्मा ऐसा नहीं है कि अस्तित्व को बनाता है और उससे अलग हो जाता है। क्योंकि उसके अलग होने का कोई उपाय नहीं है। उससे अलग होने की कोई जगह नहीं है। परमात्मा जगत के साथ इस तरह जुड़ा हुआ है, **जैसे एक नर्तक अपने नृत्य के साथ जुड़ा होता है।** एक नृत्य करनेवाला जब नाचता है, तब नाच और नर्तक अलग नहीं होते, एक ही होते हैं। नर्तक रुक जाएगा, तो नृत्य भी रुक जाएगा। आप नर्तक से यह नहीं कह सकते कि तू चला जा और अपना नृत्य छोड़े जा। इसलिए हमने परमात्मा की जो मूर्ति बनाई है, वह नर्तक की तरह बनाई है, नटराज की तरह बनाई है। उसका कारण है। क्योंकि नृत्य और नर्तक एक हैं। **इसलिए नर्तक के रूप में परमात्मा की बात सर्वाधिक ठीक से समझी जा सकती है।**

जगत और परमात्मा एक हैं। और जगत में जो भी घटित हो रहा है, वह परमात्मा का सहज स्वभाव है। इसलिए लाओत्से कहता है कि ताओ सब कुछ करता है, फिर भी उसे ऐसा करने का कोई दम्भ नहीं है। दम्भ होता ही उन्हें है, जो जोर-

जबरदस्ती कुछ करते हैं। क्या हमें जीवन में किसी ऐसे कृत्य का पता है, जो हमने बिना दम्भ के किया हो ? अगर पता हो, **तो वैसे कृत्य का नाम ही पुण्य है**। यह बात जरा कठिन मालूम पड़ेगी। क्योंकि हम तो पुण्य भी करते हैं, तो उससे दम्भ ही निर्मित होता है। सच तो यह है कि अगर दम्भ निर्मित न करवाया जा सके, तो कोई पुण्य करने को राजी ही न होगा।

अगर मैं आपसे कहूं कि यह मन्दिर बनवाना है, इसके लिए धन दें, तो आप पूछेंगे कि मेरी तख्ती कहां लगेगी ? और अगर मैं कहूं कि तख्ती इस मन्दिर में लगनेवाली ही नहीं है, तो आप पक्का मान लें कि यह मन्दिर बननेवाला नहीं है। क्योंकि लोग मन्दिर नहीं बनाते, तख्तियां बनाते हैं। और मन्दिरों पर तख्ती लगाते हैं, **ऐसा नहीं, तख्तियों पर मन्दिर लगाते हैं। तख्तियां महत्त्वपूर्ण हैं, मन्दिर गौण है।** क्योंकि बिना मन्दिर के तख्ती अच्छी नहीं लगेगी, इसलिए मंदिर के साथ उसे लगाते हैं। लेकिन तख्ती ही आधार है। अगर आपसे कहा जाए कि आप यह जो धन दान कर रहे हैं, इससे आपको प्रशंसा नहीं मिलेगी, तो **फिर दान असंभव है।** इसलिए शास्त्र समझाते हैं कि जो धन दान करेगा, उसे कितनी प्रशंसा मिलेगी लोक में और परलोक में, कितना पुण्य मिलेगा, कितना फल मिलेगा, कितना सुख और कितना आनन्द मिलेगा। यहां एक पैसा दान करो, तो शास्त्र कहते हैं कि वहां परलोक में करोड़ों गुना उपलब्ध होगा। एक पैसे का दान करवाना हो, तो करोड़ों गुने दम्भ का आश्वासन दिलाना पड़ेगा।

जिस कृत्य से दम्भ निर्मित न हो वह है पुण्य

लेकिन पुण्य का अर्थ ही कुछ और है। **पुण्य का अर्थ है ऐसा कृत्य जिससे दम्भ निर्मित न हो**। जिससे दम्भ निर्मित होता हो, **वही पाप है**। इसलिए परमात्मा ने आजतक कोई पाप नहीं किया, हम कह सकते हैं, क्योंकि उसके किसी दम्भ की कभी कोई खबर नहीं मिली। उसने अब तक यह भी नहीं कहा कि मैं हूं। इसलिए उसने जो भी किया, वह पुण्य है। आप भी जो करते हैं, वह पुण्य हो जा सकता है, यदि उससे अहंकार निर्मित न होता हो, यदि पीछे "मैं" सघन न होता हो, कृत्य हो जाता हो और मेरे में कुछ जुड़ता न हो, **तो वह कृत्य पुण्य हो जाता है**। और जिससे मेरे मैं में कुछ जुड़ जाता हो, वह कृत्य पाप हो जाता है। इसलिए सवाल यह नहीं है कि कौन-सा काम पुण्य है और कौन-सा कृत्य पाप है। लोग पूछते हैं कि कौन-सा काम पुण्य है और कौन-सा काम पाप है। गलत ही सवाल पूछते है। यह सवाल का कृत्य का

नहीं है, यह सवाल करनेवाले का है। पूछना चहिए कि किस भांति कृत्य किया जाए ? **कृत्य तो हो जाए और करनेवाला मौजूद न हो, तो वह पुण्य हो जाता है। और कृत्य न भी किया जाए और करनेवाला मौजूद हो जाए, तो पाप हो जाता है।** जरूरी नहीं है करना। एक आदमी चोरी नहीं करता है, वह सिर्फ सोच रहा है। और एक आदमी हत्या नहीं कर रहा है, सिर्फ सोच रहा है, या एक आदमी चुनाव नहीं लड़ रहा है, सिर्फ सोच रहा है। और दोनों सोचने में ही अहंकार की सीढ़ियां चढ़ते जा रहे हैं। वे सब्स्टीट्यूट हैं, पर्याय हैं। सभी लोग सीढ़ियां नहीं चढ़ पाते हैं। असली सीढ़ियां चढ़ने का अपना कष्ट है, अपनी पीड़ा है, अपनी मुसीबत है। लेकिन सभी लोग सपने तो देख ही सकते हैं। सभी लोग सम्राट नहीं हो पाते, लेकिन सभी लोग सपने में सम्राट तो हो ही सकते हैं। तो सपने से हम अपने मन को समझा-बुझा लेते हैं। लेकिन अगर सपने में भी कभी आराम-कुर्सी पर बैठकर आप सोच रहे हैं कि चुनाव जीत गए हैं, न लड़े हैं, न जीते हैं, सिर्फ सोच रहे हैं कि जीत गये हैं, तो आपने ख्याल किया होगा कि आपका **अहंकार** भीतर चार सीढ़ियां ऊपर चढ़ गया है। उसे देर नहीं लगती है। वह **ठीक थर्मामीटर के पारे की तरह आपकी जांच-परख रखता है। जहां भी आपने कृत्य में मजा लिया, वहीं तत्काल पारा ऊपर चढ़ जाता है।** नहीं किया हो कृत्य, तो भी। ठीक उससे उल्टी घटना भी घटती है। **किया हो कृत्य, तो भी अगर अस्मिता निर्मित न हो, अहंकार निर्मित न हो, तो पारा नीचे गिरता है।**

परमात्मा के होते हुए बेइमानी व हत्या क्यों ?

ताओ सब कुछ करता है, फिर भी उसे ऐसा करने का दम्भ नहीं है। वह सभी वस्तुओं का सर्वेसर्वा है, फिर भी उन्हें नियंत्रित नहीं करता है। **यह सूत्र बहुत बारीक है।** सभी वस्तुओं का सर्वेसर्वा है, फिर भी उन्हें नियंत्रित नहीं करता है। लोग पूछते रहे हैं सदियों से, यदि परमात्मा है और यदि उसके किए ही सब कुछ होता है, तो वह एक चोर को चोरी क्यों करने देता है और एक हत्यारे को हत्या क्यों करने देता है और एक बेईमान को बेईमानी क्यों करने देता है ? और जब किसी निर्बल को कोई सताता है, तब वह खड़ा देखता 'क्यों रहता है ? **यह सवाल संगत है और पूछने जैसा है।** और विचारशील मनुष्यों ने पूछा है बार-बार। सच तो यह है कि विचारशील मनुष्यों को परमात्मा के होने में जो सब से बड़ा संदेह है, **वह यही सवाल है।**

बर्ट्रेण्ड रसेल पूछता है, एक बच्चा जन्म से ही अगर अंधा पैदा हो रहा है, लूला-लंगडा पैदा हो रहा है, कैन्सर-सहित पैदा हो रहा है, और अगर तुम्हारा परमात्मा है, तो यह कैसे हो रहा है ? और तुम कहते हो कि सब कुछ वही करता है, वह सर्वेसर्वा है । बर्ट्रेण्ड रसेल कहता है कि यह सब देखकर शक होता है । कोई परमात्मा नहीं है । जो हो रहा है, यह देख कर शक होता है कि कोई परमात्मा नहीं है । जीवन जैसा नर्क बना हुआ है, यह देखकर शक होता है, यहां कोई परमात्मा नहीं है । और अगर कोई परमात्मा है, तो उसको परमात्मा कहना व्यर्थ है । उसको शैतान कहना बेहतर होगा, उसे देखकर जो हो रहा है । यह संगत प्रश्न है । अगर परमात्मा सभी कुछ कर रहा है, तो इस जगत में बुराई क्यों है, इविल क्यों है ?

एक मुसलमान मित्र मुझे मिलने आये थे । उन्होंने कहा कि मुझे सबसे बड़ा सवाल यह लगता है कि संसार में बुराई क्यों है ? बुराई होनी नहीं चाहिए' अगर परमात्मा है। वह ठीक कह रहे हैं । क्योंकि इन दोनों के बीच कोई तालमेल नहीं दिखाई पड़ता है । इतनी बुराई का इस परमात्मा से कैसे सम्बन्ध जोड़ें ? मैंने उनसे कहा, एक क्षण को दूसरी तस्वीर पैदा करिए । आप कब मानेंगे कि परमात्मा है ? उन्होंने कहा कि जब संसार में कोई बुराई न हो । मैंने उनसे कहाकि सारी बुराई संसार से हटा देते हैं, तब संसार कैसा होगा, जरा सोचकर आप मुझे बतायें । क्योंकि जिस क्षण बुराई हटेगी, उसी क्षण भलाई भी हट जाएगी । भलाई अकेली नहीं जी सकती है । भलाई जीती ही इसलिए है कि बुराई है । जिस दिन अंधेरा बिल्कुल हट जाएगा, उस दिन प्रकाश भी नहीं जी सकता है । प्रकाश जीता ही इसलिए है कि अंधेरा है । ऐसा समझें कि यदि किसी दिन हम सारी ठंडक हटा लें सारे जगत से, तो क्या गरमी जी सकेगी ? गर्मी और ठंडक एक ही चीज की मात्राएं है । ऐसा मसझ लें कि हम जीवन को हटा दें जगत से या मृत्यु को हटा दें जगत से, तो क्या दूसरा बच सकेगा ? मृत्यु को हटाएंगे, तो जीवन खो जाएगा । जीवन को हटाएंगे, तो मृत्यु खो जाएगी । **क्योंकि अगर जगत में जीवन न हो, तो मत्यु कैसे होगी ? या अगर मत्यु न हो जगत में, तो जीवन कैसे होगा ?**

जगत [जीता [है विपरीत से, पोलर अपोजिट से; वह जो ध्रुवीय विपरीत है, उसके सहारे जीता है । **जगत के, अस्तित्व के होने का जो ढंग है, वह विपरीत के बीच संगीत है** । अगर विपरीत को हटा लें, तो दोनों समाप्त हो जाते हैं । पुरुष को हटा लें जगत से, तो स्त्री खो जाएगी । स्त्री को हटा लें, तो पुरुष खो जाएगा । बुढ़ापा को हटा लें, तो जवानी] खो जाएगी, हालांकि जवान का मन होता

है कि कुछ ऐसा हो जाए कि बुढ़ापा न हो। उसे पता नहीं है कि जवानी और बुढ़ापा इतने संयुक्त हैं कि एक हटा कि दूसरा खो जाएगा। हमारा मन होता है कि जगत में कोई असुन्दर न रह जाए। लेकिन हमें पता नहीं है कि असुन्दर खोया कि सुन्दर भी खो जाएगा। ऐसे जगत की कल्पना करें, जहां असुन्दर बिल्कुल न हो, तो ध्यान रखना, उससे ज्यादा असुन्दर जगत नहीं होगा। क्योंकि वहां सुन्दर कुछ नहीं होगा। सब खो जाएगा। मैंने उन मित्र से पूछा कि समझ लें कि बुराई की सख्त मनाही है, कोई बुराई कर ही नहीं सकता. तो इस दुनिया से भलाई तिरोहित हो जएगी। और इस दुनिया की शक्ल एक कारागृह की शकल होगी। क्योंकि **जहां बुराई करने की स्वतंत्रता न हो, वहां कोई भी स्वतंत्रता नहीं हो सकती।**

असल में, स्वतंत्रता में बुराई करने की स्वतंत्रता भी छिपी है। अगर मैं किसी आदमी से कहूं कि तुम्हें सिर्फ अच्छे होने की स्वतंत्रता है, तो इस स्वतंत्रता का क्या कोई अर्थ होगा ? यदि किसी आदमी से कहूं कि तुम्हें सिर्फ अच्छे होने की स्वतंत्रता है, तो उसे स्वतंत्रता कहना फिजूल है। कहना चाहिए, तुम्हें अच्छे होने की परतंत्रता है। तब कहना चाहिए, यू आर कन्डेम्ड टू बी गुड, नाट टू बी फ्री, बट टू बी गुड। क्योंकि जब हम कहते हैं कि आप स्वतंत्र हैं अच्छा करने को, तब दूसरी स्वतंत्रता भी भीतर प्रवेश कर जाती है—बुरा करने की स्वतंत्रता।

परमात्मा सर्वेसर्वा है, फिर भी नियंत्रण नहीं करता है। इसका मतलब है कि परमात्मा निर्मित करता है, **लेकिन स्वतंत्रता निर्मित करता है।** परमात्मा बनाता है, लेकिन स्वतंत्रता बनाता हैं, परतंत्रता नहीं। इसलिए दुनिया में आदमी बुरे से बुरा होने को स्वतंत्र है– परमात्मा के होते हुए। **क्योंकि इस बुरे होने की स्वतंत्रता में ही स्वतंत्रता छिपी है।** और अगर स्वतंत्रता नहीं है, तो आदमी आदमी नहीं होगा, मशीन होगा। बुरा करने के लिए मशीन स्वतंत्र नहीं है। हम उससे जो करवाना चाहें, करवा ले सकते हैं। इसलिए वह मशीन है। **आदमी चैतन्य है। और चेतना स्वतंत्रता के बिना असम्भव है।**

आत्मा का आत्यंतिक स्वभाव स्वतंत्रता है।

लाओत्से कहता है कि बनानेवाला वही है, लेकिन वह नियंत्रण नहीं करता हैं। ही इज द क्रिएटर, बट नाट द कन्ट्रोलर, सृष्टा है, लेकिन जेलर

नहीं है। हमारा कारागृह बनाकर वह द्वार पर संतरी की तरह खड़ा हुआ नहीं है। बट्रेण्ड रसेल जैसे लोग कहते हैं कि इसी से शक होता है कि परमात्मा नहीं है । और मैं आपसे कहता हूं कि इसी से प्रमाणित होता है कि परमात्मा है। **क्योंकि जिस जगत में स्वतंत्रता न हो, उस जगत में परमात्मा नहीं हो सकता है। स्वतंत्रता ही परमात्मा के होने का आधारभूत प्रमाण है ।** वह है, क्योंकि हम इतने स्वतंत्र हैं । **वह है ।** इसे हम ऐसा समझें कि सागर है और मछलियां सागर में घूमती हैं । उन्हें पता भी नहीं चलता कि सागर है । लेकिन उस सागर में होने के कारण हो वे हैं। और सागर में जो भी गति हो रही है, जो भी स्वतंत्रता है उन्हें घूमने की, वह भी सागर के कारण है, सागर सूख जाए, तो मछलियां शून्य हो जाएंगी, मृत हो जाएंगी । उनकी सारी स्वतंत्रता खो जाएगी । सागर ही उनके लिए जगह है स्वतंत्रता की परमात्मा स्वतंत्रता है ।

इसलिए जिन्होंने गहन खोज की, महावीर या बुद्ध ने, उन्होंने परमात्मा को मोक्ष ही नाम दिया । महावीर ने तो परमात्मा नाम का उपयोग ही नहीं किया, ईश्वर नाम का उपयोग ही नहीं किया । क्योंकि वे कहते थे कि मोक्ष पर्याप्त है । मोक्ष का मतलब होता है: फ्रीडम । जगत परिपूर्ण स्वतंत्रता में जी रहा है । और अगर हम गलत कर रहे हैं, तो वह स्वतंत्रता का गलत उपयोग है । और हम चाहें, तो सही कर सकते हैं । **लेकिन स्वतंत्रता हमारी नियति है। इसलिए हम पाप की आखिरी सीढ़ी तक उतर सकते हैं। और पुण्य की आखिरी सीढ़ी तक चढ़ सकते हैं।** नर्क तक जा सकते है; स्वर्ग तक जा सकते हैं। अंधरे की आखिरी गर्त में गिर सकते हैं और प्रकाश के पूर्ण उज्जवल लोक में प्रवेश कर सकते हैं । दोनों बातें संभव हैं, **क्योंकि हमारी आत्मा का आत्यंतिक स्वभाव स्वतंत्रता है।**

सार्त्र ने ठीक कहा है, यू केन नॉट चूज टू बी फ्री, यू आर फ्रीडम: स्वतंत्र होना आप चुन नहीं सकते, आप स्वतंत्र हैं, आप स्वतंत्रता हैं । लेकिन स्वतंत्रता का मतलब यह होता है कि अगर मैं कारागृह पसन्द करूं, तो उसे भी चुन सकूं । अगर इतना भी तय हो बात कि मुझे कह दिया जाए कि तुम सब कर सकते हो, सिर्फ जेलखाने में नहीं जा सकते हो, तो भी मैं परतंत्र हो जाऊंगा । तब यह बड़ी दुनिया मेरे लिए एक परतंत्रता हो जाएगी । **स्वतंत्रता का अर्थ ही होता है पूर्ण स्वतंत्रता, दोनों तरफ जाने को पूरी सुविधा ।**

तो परमात्मा नियंता नहीं है, निर्माता है। इससे थोड़ी कठिनाई होती है हमें। क्योंकि हमारा मन यह चाहता है कि वह नियंता भी हो, तो अच्छा है जो हमारे ऊपर जिम्मेवारी है, जो उत्तरदायित्व है, जो रिस्पान्सिबिलिटी है, वह भी न रहे। हम सब मशीन होना चाहते हैं। **हम सब गुलामी खोजते हैं। क्योंकि हम ———स्वतंत्रता का उपयोग करना नहीं जानते हैं।** और हमें स्वतंत्रता मिले, तो हम अपना आत्मघात ही कर लेते हैं। हमें स्वतंत्रता जब भी मिलती है, तो हम नर्क की यात्रा कर जाते हैं। तब हम कहते हैं कि इससे तो बेहतर था कि हांथ में जंजीर होतीं, लेकिन स्वर्ग पहुंच जाते, बेहतर होता कि सब तरफ कारागृह होता, लेकिन स्वर्ग पहुंच जाते। **क्योंकि स्वतंत्रता में हम सदा नीचे ही चले जाते हैं। इसलिए हम हमेशा गुलामी ही खोजते, नये-नये ढंग से खोजते हैं। हमारे गुलामी खोजने के ढंग बहुत अद्‌भुत है।**

स्वतंत्रता से पलायन :

एरिक फ्रॉम ने एक बहुत अद्‌भुत किताब लिखी है : इस्केप फ्रोम फ्रीडम: स्वतंत्रता से पलायन। फ्रॉम का कहना है कि हर आदमी **स्वतंत्रता से पलायन** करता है। जहां भी स्वतंत्रता दिखती है, भाग कर आदमी जल्दी गुलामी में अपने को छिपा लेता है। यह गुलामी दिखाई नहीं पड़ती है। क्योंकि गुलामी की आदतें इतनी पुरानी हैं कि हमें ख्याल भी नहीं आता कि यह गुलामी है। हम पहचान नहीं पाते हैं कि यह हमारी गुलामी है।

अगर किसी को सत्य खोजना है, तो वह सत्य खोजने नहीं जाता, तात्काल शास्त्र को खोजता है। उसे पता नहीं है कि यह गुलामी है। वह सत्य भी उधार ही चाहता है, कोई उसे दे दे। अगर किसी को सत्य खोजना है, तो वह अपने पैरों पर दो कदम भी नहीं चलता है। वह जल्दी किसी गुरू के चरण पकड़ लेता है और कहता है कि बस, आप ही सब कुछ है, आप ही मुझे दे दें। वह कहता है, मुझ पापी से क्या होगा, हालांकि सब पाप उससे हो रहे हैं। क्योंकि पापी होने के लिए काफी करने की जरूरत पड़ती है। लेकिन, वह कहे जाता है कि मुझ पापी से क्या होगा। इतने पाप उससे हो चुके हैं कि वह कहता है कि में पापी हूं। लेकिन वह यह भी कहता है कि मुझ पापी से क्या होगा ? वह असल में यह कह रहा है कि किसी तरह मेरी स्वतंत्रता से मुझे बचाएं, सेव मी फ्रॉम माई

फ्रीडम । वह कह रहा है कि तुम मेरे जेलर बन जाओ । तो कल अगर मैं नर्क में भी पड़ूँगा, तो कह सकूंगा कि तुम मेरे गुरू । और कल अगर मुझे स्वर्ग ही मिल जाए, तो मैं कह सकूंगा कि आखिर मैंने ही तो तुम्हें गुरू चुना था । मैंने ही समर्पण किया था तुम्हारे चरणों में, सब कुछ छोड़ दिया था। तो वह गुरू को पकड़ेगा, शास्त्र को पकड़ेगा, नेता को पकड़ेगा ।

हिटलर या स्तालिन या मुसोलिनी या माओ ऐसे ही पैदा नहीं हो जाते हैं । पूरा मुल्क गुलाम होना चाहता है । पूरा मुल्क चाहता है कि कोई जोर से कह दे कि मुझे पता है ठीक क्या है और हम उसके चरणों में जाएं । यह सोचने की झंझट हम पर नहीं रहे कि ठीक क्या है । साफ-साफ हमें बता दो कि यह करो और यह मत करो । इसलिए हम नीतिशास्त्रों के पीछे साधु-महात्माओं के हाथ-पैर जोड़ते हैं कि बताओ ठीक क्या है, गलत क्या है । और जिनसे हम पुछ रहे हैं, उन्होंने भी किसी और से पूछा है। उन्हें भी कुछ पता नहीं है कि ठीक क्या है और गल्त क्या है । लेकिन जब लोग हमें पूछते देखते हैं, तब बतलानेवाले लोग भी मिल जाते हैं – वे कहते हैं, हम बता देंगे कि यह ठीक है और यह गलत यही चाहते हैं कि कोई हमसे बोझ ले ले। यह स्वतंत्रता बड़ी बोझिल मालूम पड़ती है। होना तो चाहिए उल्टा कि **स्वतंत्रता पंख बन जाए आकाश में उड़ने के लिए। लेकिन स्वतंत्रना** बोझिल मालूम पड़ती है जंजीरों से भी ज्यादा क्योंकि कुछ सूझता नहीं कि क्या करें ?

झेन फकीर हुआ है नानिन । वह अपने गुरु के पास था । एक रात उसे देर हो गई । अंधेरी रात है, वह वापस लौटने को है – उसने गुरु से कहा कि रास्ता बहुत अंधेरा है । तो गुरू ने कहा कि मैं तुम्हें दिये देता हूं । और गुरू ने दिया जलाया और नानिन के हाथ में दिया रखा । लेकिन जैसे ही नानिन पहली सीढ़ी पर पैर रखकर नीचे उतरने लगा, गुरू ने फूंक कर दिया बुझा दिया । नानिन ने कहा, यह कैसा मजाक करते हैं, रास्ता बहुत अंधेरा है । **गुरू ने कहाः लेकिन दूसरे के दिये के सहारे जो प्रकाश मिलता है, उससे अपना ही अंधरा बेहतर है। खोजो रास्ता अंधेरे में। रास्ते खोजने से तुम्हारे भीतर का दिया जलेगा।** रास्ता खोजोगे, तो खोजने से निखार आएगा । टकराओगे, गिरोगे, हाथ पैर टूटेंगे, कोई फिक्र नहीं, लेकिन आत्मा निर्मित होगी । मेरे दिये के सहारे हाथ-पैर तो बच जाएंगे,

लेकिन आत्मा खो जाएगी । इसलिए बुझा देता हूँ ।

नानिन ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि उस आदमी को नहीं भूल पाया हूं। यद्यपि उसने मेरे हाथ का दिया छीन लिया था और जलता हुआ दिया बुझा दिया था; लेकिन वही आदमी था, जिसने मुझे अंधेरे में धक्का दिया था और मेरे भीतर के दिये के जलने की सुविधा बनाई थी । तो आज जब मेरे भीतर का दिया जल रहा है, तब में उसे ही धन्यवाद देता हूं ।

स्वतंत्रता, परमात्मा के आस्तित्व की अघोषित घोषणा

यह स्वतंत्रता है ।

परमात्मा भी आपके हाथ में दिया दे सकता है । तब आप उस दिये क सहारे कीड़े-मकोड़ों की तरह जी सकते हैं। कभी न गिरेंगे, कभी न भटकेंगे, नर्क भी न आयेगा, सीधे स्वर्ग में हूँ जाएंगे। लेकिन जो स्वर्ग दूसरे के सहारे मिलता है, वह नर्क से भी बदतर है । क्योंकि वह स्वर्ग परतंत्रता होगी। जो शुभ अपना ही नहीं है, जो स्वयं का खोजा और जिया हुआ नहीं है **उस शुभ का होना अशुभ से भी अशुभ है।**

इसलिए लाओत्से कहता है कि ताओ निर्मित करता है, सब, लेकिन नियंत्रण नहीं करता है। इशारा नहीं करता है कि ऐसे चलो । वह चलने की शक्ति देता है, चलने के आयाम देता है, लेकिन कहता नहीं कि ऐसे चलो । चलने की शक्ति उसकी, चलने का आकाश उसका, चलने के मार्ग उसके, अंधेरा उसका, प्रकाश उसका, चलनेवाला उसका, लेकिन फिर भी इशारा नहीं करता कि बायें चलो कि दायें चलो । **वह जीवन देता है, लेकिन मुक्ति को जीवन का आधार बना देता है। हम चाहे, तो यही मुक्ति हमारे जीवन का कष्ट हो जाएगी और हम चाहें, तो यही हमारे जीवन का सौभाग्य हो सकती है** । इस स्वतंत्रता से हम चाहें, तो बड़ा सृजन हो जाए और हमारे भीतर जो छिपा परम है, वह प्रकट हो जाए । और हम चाहें, तो इस स्वतंत्रता को हम अपना ही अंधेरा बना लें, अपना ही नर्क बना लें और उसमें ही खो जाएं और नष्ट हो जाएं ?

लेकिन एक बात तय है कि जगत में परम स्वतंत्रता है । **और यह परम स्वतंत्रता परमात्मा के अस्तित्व की अघोषित घोषणा है।** यह मौन वक्तव्य है

उसका कि मैं हूं। लेकिन हम सबको यह स्वतंत्रता ख्याल में ही नहीं है। हम डरते हैं, जैसा मैंने कहा, क्योंकि स्वतंत्रता का अर्थ होता है दायित्व, स्वतंत्रता का अर्थ होता है रिस्पान्सिबिलिटी। स्वतंत्रता का अर्थ होता है कि सभी कृत्यों के लिए अंततः मैं ही जिम्मेदार हो गया। नर्क भी जाऊंगा, तो किसी को दोष न दे सकूंगा। मैं ही जिम्मेदार हूं। इस जिम्मेदारी से घबड़ाहट होती है। हम सब जिम्मेवारी टालते हैं एक दूसरे पर। और कभी-कभी तो ऐसा होता है कि एक-दूसरे की जिम्मेवारी हम एक-दूसरे पर रख देते हैं। पत्नी पति पर रख देती है, पति पत्नी पर रख देता है। दोनों निश्चिन्त हो जाते हैं कि कोई और जिम्मेवार है। उन्हें पता नहीं कि वे कैसे खेल खेल रहे हैं।

एडिक बर्ग ने एक किताब लिखी है—गेम्स द पीपुल प्ले। उसमें उन सारे खेलों की चर्चा है, जो आदमी खेलता है। यह भी एक खेल है कि हम एक दूसरे पर जिम्मेवारी डाल देते हैं – और जिसपर हम जिम्मेवारी रख रहे हैं, वह भी हम पर जिम्मेवारी रख रहा है। और मजे की बात यह है कि जो अपनी जिम्मेवारी भी न ढो सका, वह दूसरे की कैसी ढो पाएगा? लेकिन उसे पता भी नहीं है कि आपने जिम्मेवारी उसपर रखी है और आपको पता भी नहीं है कि उसने आप पर रखी है। इसलिए दोनों जीवन भर एक दूसर को दोष देते रहेंगे, बिना यह जाने हुए कि दोंनो एक जैसे भिखारी है और एक दूसरे के सामने भिक्षा-पात्र फैलाये खड़े हैं। दोनों एक दूसरे से मांग रहे हैं, पर देनेवाला उनमें से कोई भी नहीं है।

स्वतंत्रता से भय होता है। इसलिए हम किसी तरह की गुलामी चाहते हैं। हमारा जो तथाकथित परमात्मा है– लाओत्से का नहीं–हमारा जो तथाकथित परमात्मा है, **वह भी गुलामी है, वह भी हमारी गुलामी है**। वह भी। हम उस पर ही छोड़ देते हैं कि अब तू ही सम्हाल। उस पर ही हम छोड़ना चाहते हैं। उस पर ही छोड़ देते हैं कि अब तू ही सम्हाल

दुख में सुमिरन सब करें, सुख में करे न कोय .....

इसलिए बड़े मजे की बात होती है कि जब आदमी सुख में होता है, तब वह परमात्मा को स्मरण नहीं करता है। जब दुख में होता है, तभी करता है। क्योंकि दुख में ही जिम्मेवारी दूसरे पर डालने का सवाल उठता

है । सुख में तो हम खुद ही जिम्मेवारी ले सकते हैं। जब सुख आता है, तब हम खुद ही जिम्मेवार होते । वह हमारे कारण ही आता है । और जब दुख आता है, तब दूसरे के कारण । तब हम परमात्मा की तरफ उंगली उठाना चाहते हैं कि तेरे रहते और हम ऐसा दुख पा रहे हैं । तेरा रहना ी फिजूल, तेरा होना ही बेकार ! तू अगर है, तो सबूत दे कि हमारे दुख को मिटा देगा ।

एक आदमी मेरे पास आया था और वह कह रहा था कि मुझे परमात्मा पर पक्का भरोसा है; क्योंकि मैंने कहा कि यदि पन्द्रह दिनों के अन्दर मेरे लड़के की नौकरी नहीं लगती, तो मैं फिर कभी तुझ पर भरोसा नहीं करूंगा । और नौकरी लग गई। मैंनें कहा कि परमात्मा ने तुम्हारे साथ बड़ा कच्चा सौदा किया है। किसी भी दिन टूटेगा । मैंने कहा कि अब दुबारा ऐसी शर्त कभी मत रखना, नहीं तो बड़ी मुश्किल में पड़ोगे । उसने कहा कि यह क्या कहते हैं आप, अब तो मुझे पक्का भरोसा आ गया है कि परमात्मा है । मैंने कहा कि यही भरोसा तुझे और तेरे परमात्मा को भी दिक्कत में डालेगा । क्योंकि यह सब संयोग की बात है कि तेरे लड़के की नौकरी लग गई । **इस अहंकार में मत पड़ना कि तेरे लड़के की नौकरी लगानें के लिए परमात्मा को उत्सुकता लेनी पड़ी । इस अहंकार में मत पड़, नहीं तो तू ज्यादा महत्वपूर्ण है, तेरा लड़का ज्यादा महत्वपूर्ण है, तेरे लड़के की नौकरी ज्यादा महत्वपूर्ण है । परमात्मा तो एक सेवक की हैसियत का हो जाता है और अब दुबारा ऐसी सेवा मत लेना, क्योंकि संयोग सदा नहीं लगेगा ।**

दो महिने बाद फिर वह आदमी आया और कहने लगा कि आपने कैसा वचन बोल दिया, सब गड़बड़ हो गया । मैंने कहा, मैंने कोई वचन नहीं बोला । उसने कहा कि क्या ? कैसी आपने बात कह दी कि उस दिन से मैं चार-चार दफे कोशिश कर चुका, हर बार असफलता हाथ लगी । परमात्मा ने मुझसे पीठ मोड़ ली है ।

परमात्मा ने आप से पीठ मोड़ रहा है, न आपकी तरफ चेहरा किय हुए खड़ा है । न उसकी पीठ है, न उसका कोई चेहरा है । और न आपको आवाज का, न आपके निवेदन का, न आपकी प्रार्थनाओं का, न आपके आग्रहों का कोई अर्थ है । **आपका मूल्य है ।** लेकिन आपका मूल्य उसी अर्थ में है, जिस अर्थ में आप अपनी स्वतंत्रता का उपयोग कर पाते हैं, सृजनात्मक उपयोग कर पाते हैं । हाऊ टू यूज फ्रीडम

क्रियेटिवली, बस वही आपका मूल्य है।

साधना का यही अर्थ होता है; स्वतंत्रता का सृजनात्मक उपयोग ।

साधना का अर्थ होता है : स्वतंत्रता का सृजनात्मक उपयोग । और संसारी आदमी का अर्थ होता है: स्वतंत्रता का विध्वंसात्मक उपयोग करनेवाला। वह अपनी ही हत्या किये चला जा रहा है। अपनी ही स्वतंत्रता को अपने ही प्राणों के लिए बाधा बनाये चला जा रहा है। और आखिर में उसकी खुद की स्वतंत्रता खुद की सूली बन जाती है। तो दुख में हम याद करते हैं, क्योंकि दुख में हम जिम्मेवारी डालना चाहते हैं। सुख में हम बिलकुल याद नहीं करते ह। इसलिए रसेल ने लिखा है कि मैं उस दिन की प्रतीक्षा करूंगा यह मानने के लिए कि परमात्मा सच में है या नहीं और यह कि दुनिया में कोई आस्तिक है या नहीं, जिस दिन दुनिया में कोई दुख न होगा उस दिन पता चलेगा ।

रसेल ठीक कह रहा है, जहां तक हमारी आस्तिकता का सम्बन्ध है । हमारी आस्तिकता वर्षा में कच्चे रंगों की तरह बह जाएगी, अगर दुनिया में कोई दुख न हो। थोड़ा सोचें एक क्षण को, अगर दुनिया में कोई दुख न हो, तो क्या कोई भी परमात्मा को याद करेगा? क्या मन्दिर की घंटियां बजेंगी ? और चर्च के दिये जलेंगे ? क्या नमाज या अजान, सुबह नींद से उठते हुए, मस्जिद से सुनाई पड़ेंगी ? यह मन्दिर और मस्जिद, अजान और प्रार्थना और पूजा, यह यज्ञ और हवन – इन सब में हमारा दुख बोल रहा है । और मजा यह है कि न मस्जिद मिटा सकती है दुख को, न मन्दिर, न पूजा न पाठ दुख बनाते हम हैं, मिटा हम सकते हैं । **दुख हमारी स्वतंत्रता का दुरुपयोग** है ।

लेकिन स्वतंत्रता से ही हम बचना चाहते हैं । सच में कभी सोचें एक क्षण को इसे, कोई दुख न हो, तो परमात्मा का ख्याल भी कहां उठेगा ? क्यों उठेगा ? **परमात्मा तो ठीक वैसे ही है, जैसा बीमारी में दवाई का ख्याल ।** जब बीमारी ही नहीं है, तब क्या कोई पागल है कि उसे दवाई का ख्याल उठे ? परमात्मा एक दवाई, एक मेडिसिन है। उपयोग है उसका औषधि की भांति । दुख होता है, हम परमात्मा की औषधि ले लेते है । दुख जब नहीं होता है, तब औषधि की बोतल को कचरे में फेंक देते है।

दुख में चूंकि हम अपना दायित्व किसी और के कन्धे पर रखना चाहते

ह, सिर्फ इसलिए हम उसे याद करते हैं।

स्वतंत्रता और समानता विपरीत स्थितियां हैं

लेकिन परमात्मा के कंधों पर कोई दायित्व नहीं रखा जा सकता क्योंकि परमात्मा आपको परतंत्र नहीं बनाता है। आप स्वतंत्र हैं। और परमात्मा से ज्यादा स्वतंत्रता का प्रेमी होना बहुत मुश्किल है **स्वतंत्रता इतनी गहन है; इसलिए असमानता है**। समाजवादी या साम्यवादी अभी परमात्मा के सम्बन्ध में जो आलोचना करते हैं, वह यही कि यदि परमात्मा है, तो इतनी असमानता क्यों है? व्हाई दिस इनइक्वालिटी? और उसका तर्क उन्हें, जिन्होंने कभी सोचने-समझने में मेहनत नहीं की है, ठीक ही लगता है कि अगर परमात्मा है, तो इतना वैषम्य क्यों है? लोग समान होने चाहिए।

लेकिन ध्यान रहे, **स्वतंत्रता और समानता विपरीत स्थितियां है**। अगर समानता चाहते हैं, तो स्वतंत्रता नहीं हो सकती है। और अगर स्वतंत्रता चाहते हैं, तो समानता नहीं हो सकती। सभी को समान बनाया जा सकता है, लेकिन सबको परतंत्र बनना पड़ेगा। जेलखाने के अतिरिक्त कहीं भी समानता नहीं आ सकती है। और जेलखाने में भी अगर थोड़ी-बहुत सुविधा होगी, तो असमानता पैदा हो जाएगी। इसलिए सख्ती, इतनी सख्ती होनी चाहिए कि असमान होने का जरा भी मौका न मिले किसी को। तो ही समानता हो सकती है। **और पूर्ण समानता पूर्ण परतंत्रता में ही वम्भव है। इसलिए अगर कम्यूनिज्म कभी दुनिया में पूरी तरह सफल हो जाए, तो पूरी दुनिया एक बड़ी कारागृह हो जायगी**। और अगर पूरी तरह सफल न हो, तो कम्युनिज्म कभी हो नहीं सकता। कारागृह न हो तो साम्यवाद नहीं हो सकता है।

स्वतंत्रता का अर्थ ह। यह है कि जो **जैसा होना चाहे, वह वैसा होने के लिए स्वतंत्र है**। फिर असमानता हो ही जाएगी। **फिर असमानता अनिवार्य है**। और अगर समानता रखनी हो, तो फिर ठोक-पीट कर एक-एक आदमी को वहीं रखना पड़ेगा, जहाँ वह समान होगा।

एक और बहुत मजे की बात है। जितनी ज्यादा समानता होगी, उतना चेतना का तल गिर जाएगा? जितनी ज्यादा समानता होगी, **उतना चेतना**

का तल नीचा हो जाएगा । इसमें खूबियाँ हैं। समझें कि एक तीस बच्चों का क्लास है । उसमें तीसवें नम्बर पर जो बच्चा है, उसको जबरदस्ती पहले नम्बर का नहीं बनाया जा सकता है । लेकिन पहले नम्बर वाले को जबरदस्ती तीसवें नम्बर का बनाया जा सकता है । तीसवें लड़के को जबरदस्ती पहले नम्बर का नहीं बनाया जा सकता है, लेकिन पहले नम्बर के बच्चे को पहले नम्बर पर पहुंचने से रोका जा सकता है और तीसवें की जगह में खड़ा रखा जा सकता है । अगर वस्तुतः समानता चाहिए, तो वह निम्न तल पर होगी । क्योंकि निम्नतम को आप खींच कर श्रेष्ठ नहीं बना सकते हैं। लेकिन श्रेष्ठ को आप रोक कर निम्न रख सकते हैं । यह आसान नहीं है कि जो अस्पताल में बीमार पड़े हैं, उन सबको स्वस्थ की, श्रेष्ठतम स्वस्थ की कतार में लाया जा सके। लेकिन यह बिलकुल आसान है कि जो स्वस्थ है, उनको अस्पताल की खाटों पर लिटाया जा सके । इसमें कोई कठिनाई नहीं है ? पीछे खींचना सदा आसान है, आगे ले जाना सदा कठिन है। इसलिए जितनी बड़ी समानता होगी, उतना चेतना का तल नीचे होगा। और जितनी बड़ी स्वतंत्रता होगी, उतनी चेतनाएं आकाश को छू सकेंगी।

लेकिन स्वतंत्रता का अर्थ ही यह होता है कि जो ऊंचाई छूना चाहेगा, वह छुएगा और जो नहीं छूना चाहेगा, वह नहीं छुएगा। जो नहीं उठना चाहेगा, वह बैठा रहेगा अपनी जगह पर । जो चलना चाहेगा, वह दूर की यात्रा पर भी पहुंच जा सकता है । तो जो लोग कहते हैं कि समानता क्यों नहीं है जगत में, अगर परमात्मा है–क्योंकि मार्क्स ने परमात्मा को इन्कार ही इसीलिए किया कि जब जगत में इतनी असमानता है तब परमात्मा नहीं हो सकता । उनसे मैं कहता हूं कि परमात्मा के होने का यह एक सबूत है कि **इतनी असमानता है, क्योंकि इतनी स्वतंत्रता है**।

अक्सर लोग स्वतंत्रता और समानता का नारा एक साथ लगाते हैं । बल्कि एक तीसरा नारा और लगाते हैं, जो और भी हैरानी का है । **फ्रान्स की राज्य-क्रांति में जो नारा था, वह था जस्टिक, फ्रीडम. इक्वालिटी; न्याय, समानता, स्वतंत्रता । यह बिल्कुल पागलपन का नारा है** । पर हमें ख्याल में नहीं आता, क्योंकि हम शब्दों के मोहजाल में पड़ जाते हैं। कभी उनके भीतर प्रवेश कर हम नहीं देखते हैं । **अगर समानता होगी, तो स्वतंत्रता नहीं बचेगी । अगर स्वतंत्रता होगी , तो समानता नहीं बचेगी** । और अगर न्याय चाहिए, तो इन

दो में से सिर्फ एक को चुनना पड़ेगा । अगर न्याय चाहिए, तो दोनों को नहीं चुना जा सकता है । और यदि स्वतंत्रता को चुना जाएगा, तो न्याय एक ढंग का होगा । और यदि समानता को चुना जाएगा, तो न्याय दूसरे ढंग का होगा । अगर समानता को चुनते हैं, तो असमान होने की कोशिश अन्याय होगी । और **अगर स्वतंत्रता को चुनते हैं, तो असमान होने की सुविधा ही न्याय होगी । अगर समानता को चुनते हैं, तो प्रत्येक व्यक्ति को बांध कर रखना ही न्याय होगा** और अगर स्वतंत्रता को चुनते हैं, तो प्रत्येक व्यक्ति को असमान हो जाने की सुविधा, व्यवस्था और मार्ग देना ही न्याय होगा। किसी के असमान होने में कोई बाधा पड़े, तो यह अन्याय होगा । ये तीनों बड़ी उल्टी बातें हैं। और स्वतंत्रता और समानता तो भारी सवाल है ।

साम्यवाद अकारण अनीश्वरवादी नहीं है

इसलिए मार्क्स ने ईश्वर को इन्कार कर दिया । उसे ईश्वर से ऐसे कोई ज्यादा प्रयोजन नहीं था । ईश्वर से कोई लेना-देना नहीं था । लेकिन एक बात उसे समझ में आई और वह यह कि **अगर ईश्वर है, तो स्वतंत्रता नष्ट नहीं की जा सकती है।** अगर ईश्वर है, तो यह जो असमानता है, यह जारी रहेगी। तो अगर हमें असमानता नष्ट करनी हो, स्वतंत्रता नष्ट करनी हो, तो स्वतंत्रता का जो केन्द्रीय सिद्धांत है ईश्वर, उसे हमें विदा कर देना चाहिए । **इसलिए कम्यूनिज्म अकारण अनीश्वरवादी नहीं है।** उसका कारण है । और गहरा कारण है। इसलिए कोई आदमी कम्युनिस्ट और आस्तिक साथ-साथ हो, तो यह गैर-मुमकिन है। यह नहीं हो सकता है । **कम्युनिस्ट और आस्तिक साथ साथ हो, यह असम्भव है।** उसका नास्तिक होना अनिवार्य है । क्योंकि परमात्मा का अर्थ ही यह होता है कि नियंत्रण नहीं, स्वतंत्रता । जो लाओत्से कह रहा है, वह मार्क्स से ढाई हजार साल पहले कह रहा है। नियंत्रण नहीं, तो ही स्वतंत्रता हो सकती है। और स्वतंत्रता हो, **तो ही विकास की संभावना है ।**

लेकिन, तब दायित्व हमारे ऊपर है । और दायित्व से अगर हम बचना चाहते हैं, तो कोई न कोई गुलामी हम तत्काल चुन लेंगे। अगर हमें परमात्मा न मिले गुलाम बनाने को, अगर गुरू न मिले, तो हम राज्य को, स्टेट को मालिक बना लेंगे । अंतर नहीं पड़ेगा । कोई चाहिए, जो हमारे गले में लगाम डाल दें और हमें जानवरों की तरह चलाए । हम खुद नहीं चल

सकते, कोई हमें घसीटे, कोई हमें धक्का दे । तब हम ज्यादा आश्वस्त होते हैं। तब हमें लगता है कि अब ठीक जा रहे हैं । अब भूल का कोई कारण नहीं है । लेकिन ध्यान रहे, **यही बड़ी से बड़ी भूल है** । इससे बड़ी दूसरी और कोई भूल हो नहीं सकती है । यह बड़ी से बड़ी भूल है । अपनी स्वतंत्रता को खोकर हम कुछ भी कर, तो भूल हो जाएगी, पाप हो जाएगा, अपराध हो जाएगा ।

लाओत्से कहता है, इसे ही ताओ की रहस्यमयी विशेषता कहते हैं । दिस इज द मोस्ट मिस्टीरियस क्वालिटि आफ द ताओ – यही उसकी सबसे रहस्यपूर्ण विशेषता है । है भी । **होना उसका है और फिर भी वह किसी की परतंत्रता नहीं है। इसे थोड़ा सोचें ।**

परमात्मा की मौजूदगी हमें आत्मनिंदित कर देगी

अगर परमात्मा यहां खड़ा हो जाए अभी, इसी वक्त, तो आप स्वतंत्र नहीं रह जाएंगे । कुछ करें नहीं, सिर्फ खड़े हो जाएं, सिर्फ परमात्मा यहां मौजूद हो जाय, तो आप सब परतंत्र हो जाएंगे तत्काल । क्यों ? **क्योंकि उसकी मौजूदगी आपके लिए आत्म-निन्दा बन जाएगी** । उसकी मौजूदगी में आप घबड़ा जाएंगे, आपके सारे पाप आपके सामने दिखाई पड़ने लगेंगे । इसलिए धार्मिक आदमी लोगों को समझाते रहे हैं कि वह सब तरफ से देख रहा है, उसकी हजार-हजार आंखे हैं । यह तरकीब है । **उसकी आंखें बिल्कुल नहीं है । इसका यह मतलब नहीं कि वह अंधा है । वह बिना आंख के देख सकता है** । लेकिन धार्मिक आदमी समझा रहा है कि वह सब तरफ से देख रहा है । अगर तुम चोरी कर रहे हो, तो ध्यान रखना, भले पुलिसवाला वहाँ न हो, मजिस्ट्रेट वहाँ न हो, मकान-मालिक वहां मौजूद न हो, लेकिन परमात्मा वहाँ मौजूद है । उसकी मौजूदगी आपमें भय पैदा करवाने के लिए समझाई जाती है । इसलिए कहीं भी जाओ, कुछ भी करो, एक तो वह देख रहा है । हजार आंखें आप पर लगी हुई हैं ।

अगर सच में किसी आदमी को इस पर पक्का भरोसा आ जाए, तो पाप करना मुश्किल हो जाएगा; क्योंकि हजार आंखें, सर्चलाइट की आंखें, परमात्मा की आंखें, एकदम छेद देगी सब तरफ से । वे एक्सरे की आंखें हैं, हड्डी-हड्डी तक पार कर जाएंगी । चोरी करियेगा कैसे ? एक पैसा उठा रहे हैं और हजार आंखें देख रही हैं । पसीना-पसीना हो जाएगा, शरीर नहीं, आत्मा पसीना-पसीना हो जाएगी । हाथ से पैसा छूट

जाएगा । आप भाग खड़े होंगे ।

लेकिन इस तरह जो पाप से बचा, वह पाप से बचा नहीं, सिर्फ भय में गिरा । **पाप तो हो गया, दोहरा हो गया –चोरी भी हो गई और भय भी हो गया ।** मैंने सुना है कि एक कैथेलिक नन बाथरूम में भी पकड़े पहन कर नहाती थी । तो उसकी और साध्वियों ने पूछा उससे कि क्या तू पागल हो गई, है, बाथरूम में कपड़े पहन कर नहाने की क्या जरूरत है ? उसने कहा कि क्या तुमने पढ़ा नहीं कि परमात्मा सब जगह मौजूद है । बाथरूम में भी मौजूद है । पर उस पागल को किसी ने बताया नहीं कि जो बाथ-रूम में देख सकता है, वह कपड़े के भीतर भी देख ही लेगा । अगर वह सभी जगह मौजूद है, तब तो कहीं भी नग्न होने की सुविधा है, क्योंकि वह देख ही रहा है । अब कोई उपाय ही नहीं है ।

लेकिन यह भय को, फीयर-काम्पलेक्स को खड़ा करने की चेष्टा है । और इसके दुष्परिणाम ही हुए हैं । आदमी अच्छा नहीं बना, सिर्फ भयभीत बना । **और भयभीत अदमी कभी अच्छा नहीं हो सकता है । सिर्फ अभय को उपलब्ध आदमी ही अच्छा हो सकता है ।** लेकिन धर्म-गुरुओं ने परमात्मा को मौजूद करने की कोशिश की, जगह-जगह मौजूद करने की कोशिश की । यद्यपि परमात्मा स्वयं बिल्कुल गैर-मौजूद है, टोटली एब्सेंट है, बिल्कुल गैर-मौजूद है । **वह भी उसकी स्वतंत्रता का हिस्सा है ।** अगर वह मौजूद होता है, तो हम स्वतंत्र हो ही नहीं सकते, हम हो ही नहीं सकते । उसके खड़े होते ही हम परतंत्र हो जाएंगे । क्योंकि उसकी मौजूदगी ही हमारे भीतर, अंत:करण के लिए पीड़ा बन जाएगी । उसके सामने कैसे होगी चोरी ? उसके सामने कैसे होगा पाप ? उसके सामने कैसे होगी हिंसा ? वह असंभव हो जाएगा।

इसलिए परमात्मा की स्वतंत्रता का अनिवार्य हिस्सा है उसकी गैर-मौजूदगी, उसकी एबसेन्स । वह ऐसे है, जैसे है ही नहीं । क्लास लगा हुआ है और शिक्षक गैर-मौजूद है । तो जिसको जो सूझ रहा है, जिसको जो जी में आ रहा है, वह कर रहा है । स्वतंत्र है प्रत्येक करने को । **यह उसकी गहनतम रहस्यमयी विशेषता है कि वह है और गैर-मौजूद है ।** है और उपस्थिति नहीं है । सब जगह है । रत्ती भर जगह उससे खाली नहीं है, इंच भर जगह उससे खाली नहीं है । रोएं-रोएं में, धड़कन-धड़कन में, कण-कण में वही है और फिर भी गैर-मौजूद है । फिर भी पता नहीं चलता कि वह है भी । और लोग पूछते हैं : क्या ईश्वर है ? कहां है ? यही उसकी रहस्यमयी विशेषता है । **है और हम पूछ सकते हैं : कहां है ? सब जगह है और हम पूछ सकते हैं: कहां है । वही है और हम कह सकते हैं कि दिखाई नहीं पड़ता, हम नहीं मान सकते ।**

क्योंकि कहीं होता, तो दिखाई तो पड़ जाता। किसको कब दिखाई पड़ा ? और जो कहता भी है कि मैं जानता हूं, वह भी कहां बता सकता है दूसरों को ? हम कह सकते हैं, वह पागल हो गया है, सपना देख रहा है, मष्तिष्क खराब हो गया है, कल्पना में डूब गया है, प्रक्षेप में पड़ गया है। क्योंकि हजार हैं कहनेवाले कि दिखाई नहीं पड़ता है। और कभी कोई एक कहता है कि है। **वह इतना अकेला पड़ जाता है, बहुत अकेला पड़ता है।**

बुद्ध या महावीर या क्राइस्ट या मोहम्मद बहुत अकेले हैं। असल में इनसे ज्यादा एकाकी आदमी जमीन पर दूसरे नहीं हुए हैं। इतनी बड़ी भीड़ में ये रहते हैं और अकेले हैं। महावीर को हजारों लोग घेरे रहते है, लेकिन बिल्कुल अकेले हैं। क्योंकि महावीर जिस बात को कह रहे हैं, हममें से कोई भी नहीं जानता है। और इनमें से कोई भी नहीं मानता है। यह लाओत्से जो कहा रहा है, इसके पास भी हजारों की भीड़ लगी रही, लेकिन यह आदमी अकेला है। यह हैरानी की बात है कि लाखों की भीड़ से घिरे हुए ये लोग नितांत अकेले हैं। क्योंकि ये जो कह रहे हैं उस पर हम सबको शक है। यह हो नहीं सकता है। दिखाई तो पड़ता नहीं है। पर ये आदमी प्यारे हैं, मैग्नेटिक है, बड़े आकर्षक है। इनके प्राणों में कोई चुम्बक है कि इनकी बातों पर कोई भरोसा भी नहीं आता और फिर भी इनके पीछे हमें चलना पड़ता है। इनमें कुछ जादू है, ये हिप्नोटिक हैं, सम्मोहक हैं, पकड़ लेते हैं, फिर छोड़ते ही नहीं है। मानने का मन नहीं होता, इन्कार करने की इच्छा होती है। हजार बार भागते हैं, उनके खिलाफ सोचते हैं, इनसे बचने की कोशिश करते हैं। और फिर कुछ है कि ये लोग खींच लेते हैं। पर ये लोग अकेले हैं। क्योंकि ये उसकी बात कर रहे हैं, जो इन्हें मौजूद मालूम पड़ता है और हमारे लिए बिल्कुल गैर-मौजूद हैं, हमारे लिए बिल्कुल गैर-मौजूद है।

राम कृष्ण, विवेकानन्द से कहते हैं कि सुना है मैंने कि तू कई दिनों से भूखा है। पागल, तो तू अंदर जाकर मां से मांग क्यों नहीं लेता है ? तुझे क्या चाहिए ? विवेकानन्द बुद्धिमान युवक थे, सोच-समझवाले थे। इस तरह की बात रामकृष्ण करते हैं कि भीतर जाकर मां से मांग क्यों नहीं लेता। कहाँ है मां ? कौन है मां ? लेकिन रामकृष्ण इतने भरोसे से कह रहे हैं कि इनके सामने यह भी हिम्मत नहीं पड़ती कहने की कि कहाँ है, कौन है। कर्ज है। पिता मर गये हैं। कर्ज चुकता नहीं है। मां भूखी रहती है। इतना ही खाना किसी दिन बनता है कि एक ही खा सकता है। या तो मां खा ले या विवेकानन्द खा लें। तो विवेकानन्द कहते हैं कि फलां मित्र के यहां आज मेरा निमंत्रण है, मैं वहां चला जाता हूं। वे ऐसा करते हैं, ताकि मां

खाना खा ले । क्योंकि एक ही खा सकता है, इतना ही खाना है । भूखे ही घूम कर, रास्ते पर चक्कर लगाकर वे हंसते हुए घर लौट आते हैं, पेट पर हाथ फेरते हैं डकार भी लेते हैं और कहते हैं कि बहुत अच्छा हुआ, मित्र के घर चला गया, अच्छा भोजन मिला, ताकि मां निश्चिन्त रहे । जब रामकृष्ण को पता चलता, तब कहते, तू पागल है, कितना है कर्ज तेरा ? तू जाकर मां से मांग क्यों नहीं लेता है ? पागल हैं रामकृष्ण ! कौन मां ? कौन देगा ? भरोसा नहीं आता, विश्वास नहीं पड़ता ।

रामकृष्ण पुजारी हुए हैं। आठ दिन बाद ही जिस समिति ने उनको पुजारी बनाया है, जिस ट्रस्टी मंडल ने उन्हें पुजारी बनाया है, उसने उनपर मुकदमा चला दिया । आठवें दिन उसके सामने रामकृष्ण बुलाए गए । समिति के लोगों ने कहा : तुम आदमी कैसे हो ? क्योंकि हमने सुना है कि भोग लगाने के पहले उसे तुम चख लेते हो । तो भोगे पहले लगाना होता है कि पहले चखना होता है ? जूठा भोग लगता है । रामकृष्ण ने कहा कि मेरी मां जब मुझे खाना खिलाती थी, तो बनाकर पहले खुद चखती थी, फिर मुझे देती थी । तो मैं मां को बिना चखें नहीं दे सकता हूं । पता नहीं, खाने योग्य बना भी हो कि नहीं बना हो । वह मंडल जो ट्रस्टियों का था, वह अपना सिर ठोकता है कि कैसी मां ? मंदिर उनका है, मां की मूर्ति उन्होंने खड़ी की है । इस पुजारी को तो पकड़ लाये हैं, एक पागल आदमी को । अठारह रुपए महीने की कुल जमा इसकी हैसियत है । लाखों का वह मंदिर है, बनानेवाले वे हैं । और यह पुजारी उनसे कह रहा है कि बिना चखे मैं मां को चढ़ा नहीं सकता, क्योंकि पता नहीं, भोजन करने योग्य बना है या नही बना है । नौकरी छोडने को राजी हूं; लेकिन भोजन को पहले चखूंगा, फिर भोग लगाऊंगा । फूल पहले सूघूंगा, फिर चढ़ाऊंगा । अगर सुगन्ध नहीं है, तो चढ़ाने से फायदा क्या है ? ट्रस्ट के लोग एक दूसरे की तरफ हैरानी से देखते हैं, यह आदमी क्या कह रहा है ? पागल हो गया है । मंदिर हमने बनवाया है, मूर्ति हमने खड़ी की है । कहाँ की मां है ? कहाँ का क्या है ? सब हमारा खेल है, नाटक है । पुजारी पागल है । भरोसा हमें कभी आता नहीं इन लोगों का । लेकिन रामकृष्ण की आंख में देखते हैं, तो मानना पड़ता है कि शायद ठीक ही कहता हो, **शायद इसको दिखाई पड़ता हो** । शक तो पूरा है ।

यह व्यक्ति अकेला है । और इसके अकेले रहने का सबसे बड़ा कारण परमात्मा की यह रहस्यमयी विशेषता है कि वह है और अनुपस्थित है । एज इफ ही इज नाट । ही इज, एज इफ ही इज नाट । पूरी तरह है, पर यह **एज इफ** (जैसे कि) ही उसका रहस्य है कि बिल्कुल गैर-मौजूद है । इसलिए जो गैर-मौजूदगी में देखने की कला

खोज लेते हैं, वे ही उसे देख पाते हैं। जो बिना आंखो के देखने की कला खोज लेते ह, वे ही उसे देख पाते हैं। **और जो बिना हाथों के उसके आलिंगन मे उतर जाते हैं वे ही उसको आलिंगन कर पाते हैं। लेकिन, इस रहस्यमयी विशेषता को न तो नास्तिक मानते हैं, न तो आस्तिक मानते हैं। इसको समझ लें।**

एक ही तर्क : आस्तिक व नास्तिक का

नास्तिक तो कहते हैं : छोड़ो, बकवास है सब। जो नहीं है, वह नहीं है। इतना उल्टा घूम कर कान पकड़ने की जरूरत क्या है ? सीधा पकड़ लें; नहीं है, तो नहीं है। है, तो है। नास्तिक का तर्क सीधा और साफ है, गणित को मानता है, व्यवस्थित है। वह कहता है कि कान को पकड़ते हैं सीधे, इतना उल्टा जाने की क्या जरूरत है कि ऐसा, जैसा नहीं है: एज इफ, इज नॉट। कहो सीधे कि वह नहीं है: ही इज नॉट। बात खत्म हो गई। एज इफ का इतना लम्बा चक्कर क्या है ? जैसे कि जोड़ने की क्या जरूरत है? नहीं है, तो नही है। है तो है। नास्तिक भी कहता है कि अगर है, तो उसे प्रकट होना चाहिए, 'है' के रूप में तब हम स्वीकार कर लेंगे।

आस्तिक की भी यही दिक्कत है। आस्तिक भी मुश्किल में पड़ता है। अभी एज इफ उसकी भी पकड़ में नहीं आता हैं, जैसे नहीं है, ऐसा है—यह वह भी नहीं समझ पाता है। फिर वह तरकीबें खोजता है। और उसकी तरकीबें जाहिर हैं। उसकी एक तरकीब तो यह है कि वह प्रतीक बनाता है। शब्दों को प्रकट करने के लिए, इस रहस्यमयी विशेषता को सम्भव करने के लिए, तर्क सीधा करने के लिए वह प्रतीक बनाता है। वह एक मूर्ति खड़ी करता है। परमात्मा की बात छेड़ता है, मूर्ति के चरण पकड़ता है। अब मूर्ति कम से कम है। और तब वह कहता है कि अब कुछ है, जो हाथ में आ गया। कुछ हाथ में आ गया है। तब किसी राम को, तब किसी बुद्ध को, तब किसी कृष्ण को रखता है, उनके चरण पकड़ता है और कहता हैं कि छोड़ो, वह रहस्यमय होगा, वह परम ब्रह्म होगा, तो होगा पर तुम हो और तुम ही काफी हो। मगर यह भी तर्क नास्तिक का ही है। नास्तिक की ही बात है यह भी। नास्तिक से वह जीत नहीं पाता है, तो कहता है कि नहीं होगा परमात्मा, राम तो है, राम परमात्मा। कृष्ण तो है; कृष्ण परमात्मा है।

फिर वह राम और कृष्ण के आसपास चमत्कारों की कथाएं इकट्ठी करता है। क्योंकि नास्तिक कहता है कि अगर राम के पैर में कांटा गड़ता है और खून निकलता है, तो हममें और राम में फर्क क्या है? अगर महावीर के पैर में कांटा गड़ता है और खून निकलता है, तो महावीर और हममें फर्क क्या है? और अगर गर्दन कांटो, तो महावीर भी मर जाएं और हम भी मर जाएं, फिर वे कैसे परमात्मा हैं? तो फिर आस्तिक को इनके आसपास चमत्कार जोड़ने पड़ते हैं। आस्तिक को कहना पड़ता है कि नहीं, काटो महावीर को, तलवार ही कट जाएगी, महावीर नहीं कटेंगे। जीसस को मारो—तुम समझ रहे हो कि मार लिया – दूसरे दिन जीसस रिसरेक्ट हो जाते है, पुनः जीवित हो जाते हैं। फिर दिखाई पड़ते हैं, फिर है। उनको तुम मार नहीं सकते हो। तब वह कथाएं जोड़ता चला जाता है। यह सिर्फ हमारी नासमझी का फल है। इस रहस्यमयी विशेषता को न समझने के कारण हमको यह सब उपद्रव जोड़ने पड़ते है।

प्रभु! आप चमत्कार क्यों नहीं करते?

एक मित्र कल ही आये थे। समझदार हैं, विचारशील हैं, मुझे वर्षों से प्रेम करते हैं। वे मुझसे कहने लगे, आप भी कुछ साईंबाबा जैसा क्यों नहीं करते हैं, कोई एकाध चमत्कार करिए, तो अभी लाखों लोग आ जाएं। इन लाखों लोगों को बुलाकर क्या करना है? उनको बुलाकर भी क्या करियेगा? निश्चित ही चमत्कार से वे भागे आ जाते हैं। लेकिन चमत्कार से आ जाते हैं, साईंबाबा से नहीं आते। एक भी आए, साईंबाबा के कारण आए, तो कुछ फल है। चमत्कार से आए, तो कुछ भी फल नहीं है। क्योंकि चमत्कार से जो आता है, वह आस्तिक नहीं है। **अस्तिक तो वह है, जो कहता है कि इस जगत में सभी कुछ चमत्कार है। इस जगत में कुछ ऐसा है ही नहीं, जो चमत्कार न हो। एक बीज वृक्ष बन रहा है, आकाश में बादल चल रहे हैं, सूरज निकल रहा है, तारे हैं, आदमी है, पशु हैं, पक्षी है, सब कुछ चमत्कार है।** जिसको हर चीज चमत्कार नहीं दिखती, वह कहता है कि हाथ में से राख निकल रही है, तो यह बड़ा चमत्कार हो रहा है। इस जगत में जहां सूरज निकल रहा है, यह चमत्कार नहीं हो रहा है इस अंधे को। और इसके हाथ से जरा-सी राख निकल रही है, तो कहता है कि चमत्कार है।

यह राख को माननेवाली जो बुद्धि है, यह बुद्धि परमात्मा की तरफ जानेवाली बुद्धि नहीं है। यहां लाख की भीड़ तो इकट्ठी हो सकती है, लेकिन यह भीड़ मदारी के डमरु को सुनकर इकट्ठी हुई भीड़ है। इसका धर्म से कुछ लेना-देना नहीं है। लेकिन मुसीबत है। इसलिए महावीर या बुद्ध या कृष्ण या राम या क्राइस्ट या मोहम्मद, इनके —आसपास जो कथाएं गढ़ी जाती है, वे सरासर झूठ हैं। वे झूठ हैं, लेकिन भक्त की मजबूरी है। वह अगर न जोड़े, तो वे भगवान नहीं मालूम पड़ते हैं। वह अगर न जोड़े, तो वे साधारण आदमी रह जाते हैं। इसलिए उसे कहना पड़ता है कि मोहम्मद जब चलते हैं, तो कितनी ही धूप हो, एक बदली उनके ऊपर चलती है। उसे कहना पड़ता है, उसकी मजबूरी है। मजबूरी वही है, क्योंकि तर्क उसका भी नास्तिक का है, बुद्धि उसकी भी नास्तिक की है। हृदय उसके पास भी नहीं है आस्तिक का, जो कहे कि चमत्कार को क्या खोजने जाएं, इस जगत में ऐसी कोई चीज ही नहीं है, जो चमत्कार न हो। कोई एकाध चीज खोज लाएं, जो चमत्कार न हो, तब मैं समझूं। इस जगत में सभी कुछ चमत्कार है।

आप हैं, यह कोई छोटा चमत्कार है! आपके होने का तो कोई भी कारण नहीं है, कोई भी तो वजह नहीं है। आप न होते कोई शिकायत नहीं कर सकता था। पर आप हैं, पूरे हैं। और कभी आपको खयाल नहीं आता कि बड़ा चमत्कार प्रकट हुआ कि मैं हूं। मेरे होने की कोई जरूरत नहीं है। मैं न होता तो कुछ हर्ज नहीं होता। मैं नहीं था, तब भी दुनिया चलती थी। मेरी बिल्कुल जरूरत नहीं है, फिर भी मैं हूं। और मेरा यह होना एक क्षण में अगर टूट जाए, तो मैं शिकायत नहीं कर सकता किसी से कि मुझे नहीं क्यों कर दिया गया। मैं हूं, तो पता नहीं, कौन कर जाता है? मैं नहीं हो जाता हूं, तो पता नहीं, कौन कर जाता है? इतना बड़ा चमत्कार प्रतिपल घटित हो रहा है आपके होने में ही और आप हैं कि जा रहे है देखने कि एक हाथ से थोड़ी-सी राख गिर गई, तो भारी चमत्कार हो रहा है।

बुद्धिहीनता ही चमत्कार मालूम पड़ती है। बुद्धि की कमी से ही चमत्कार दिखाई पड़ते हैं। बुद्धि हो, तो सारा जगत ही चमत्कार हो जाता है। नहीं तो आस्तिक को तरकीबें खोजनी पड़ती हैं सिद्ध करने की कि राम भगवान हैं, कृष्ण भगवान हैं मैं यह नहीं कह रहा हूं कि भगवान नहीं है। मैं यह

कह रहा हूं कि यहां सब कुछ भगवान है। यहां सब भगवान है। यहां ऐसा कुछ भी नहीं है, जो भगवान न हो। इसलिए अकारण इसको सिद्ध करने की कोई भी जरूरत नहीं है कि राम भगवान हैं। यह तो व्यर्थ की बकवास है। यहां कुछ है ही नहीं, जो भगवान नहीं है। तो राम तो भगवान होंगे ही। **यहां तो होना मात्र ही भगवान का है।** लेकिन फिर हमें कोशिश करनी पड़ती है तो फिर अकेले सीधे-सादे आदमी से भगवान तो नहीं होता। तो हमें तरकीबें खोजनी पड़ती हैं कि ये-ये कारण हैं, जिनसे भगवान हैं। फिर हम उनको सामने खड़ा कर लेते हैं। फिर सामने खड़ा करके हम निश्चिन्त हो जाते है। फिर यह जो रहस्यमयी विशेषता है परमात्मा की, इसको हमने भुलाया, इसको हमने छुड़ाया, अलग किया अपने से। हमने अपने भगवान को खड़े कर लिये। फिर हम मूर्ति बनाते हैं, अवतार बनाते हैं, तीर्थंकर बनाते हैं और इनके आसपास हम घूमते हैं। क्योंकि हमारे तर्क में ये तो समझ में आते, हैं, लेकिन लाओत्से की 'मिस्टीरियस क्वालिटी आफ द ताओ,' यह रहस्यमयी विशेषता हमारी समझ में नहीं आती।

लेकिन जब तक यह समझ में न आयें, तब तक जानना कि धर्म के द्वार पर आपका प्रवेश नहीं हुआ है। जिस दिन इस रहस्यमयी विशेषता को समझ में लाने की आप क्षमता जुटा लें, उसी दिन प्रभु के मंदिर की आपको पहली झलक मिलेगी। उसके पहले कोई भी झलक नहीं मिलती है। उसके पहले के बनाए गए परमात्मा आपके गृह-उद्योग के फल हैं, वे होम-मेड हैं। उसके पहले निर्मित अवतार और तीर्थंकर आप की कुशलता के, आपकी कला के सबूत हैं।

अगर परमात्मा में प्रवेश करना है, तो इस रहस्यमयी विशेषता को स्मरण रखना। ही इज प्रेजेन्ट, एज इफ़ ही इज नॉट, ही इज एबसेन्ट येट ही इज प्रेजेन्ट।' अनुपस्थित है वह और मौजूद है। और मौजूद है सब जगह और ऐसे है कि जैसे नहीं है।

इसे अगर सतत स्मरण रख सकें और अगर यह सांस-सांस में प्रवेश कर जाए, तो आपके जीवन में धर्म का उद्घाटन, धर्म का पर्दा उठना शुरू हो जा सकता है।

नये भारत की ओर.... ... .

संकलन : स्वामी कृष्ण सरस्वती

(१) भारत के पुरानेपन का बोध
(२) भारत, भारत रहकर ही नया हो सकता है
(३) नये व पुराने के बीच संतुलन आवश्यक
(४) अतीत का अनुभव और भविष्योन्मुख दृष्टि
(५) विज्ञान-पदार्थ की नींव और धर्म-अध्यात्म का शिखर
(६) पूर्व और पश्चिम का विनिमय नहीं संश्लेषण
(७) मुल्क की इकट्ठी उर्जा, बूढ़े की समझ और जबान के पर से ही विश्व के साथ चलना संभव

एक नये भारत की ओर, इस सम्बन्ध में मैं आपसे थोड़ी सी बातें कहना चाहूँगा । पहली बात तो यह कि भारत को हजारों वर्ष तक यह पता ही नहीं था कि वह पुराना हो गया । असल में पुराने होने का पता ही तब चलता है जब हमारे पड़ोसी नये हो जायें । **पुराने के बोध के लिए किसी का नया हो जाना जरूरी है।** भारत को हजारों वर्ष तक यह पता नहीं था कि वह पुराना हो गया है। इधर इस सदी में आकर हमें यह प्रतीति होनी शुरू हुई है कि हम पुराने हो गये हैं । इस प्रतीति को झुटलाने की हम बहुत कोशिश करते हैं । क्योंकि यह बात मन को वैसे ही दुख देती है जैसे किसी बूढ़े आदमी को जब पता चलता है कि वह बूढ़ा हो गया है, तो दुख शुरू होता है । बूढ़ा होना जैसे दुखद है वैसी किसी राष्ट्र के बूढ़े हो जाने का भी दुख है। बूढ़ा आदमी चाहे तो अपने बुढ़ापे को झुठलाने की कोशिश कर सकता है लेकिन झुटलाने से बुढ़ापा कम नहीं होता । भारत भी इधर पचास वर्षों से निरन्तर यह बात इन्कार करने की कोशिश कर रहा है कि हम पुराने हो गये हैं। इस इन्कार करने की उसने कुछ मानसिक व्यवस्था की है, वह समझना जरूरी है ।

एक तो भारत यह कहता है कि जो भी श्रेष्ठ, जो भी सत्य, जो भी सुन्दर है, वह उसे उपलब्ध हो चुका है। इसलिए नये होने की अब कोई जरूरत नहीं है । विकास की जरूरत तो वहां है जहां अविकसित हो कोई । लेकिन जिस देश को यह ख्याल हो कि विकास हो ही चुका है, वहां अब

विकास की और परिवर्तन की कोई गुंजाइश नही है। हमें विकास न करना पड़े, हमें परिवर्तन न करना पड़े, इस बात को इन्कार करने के लिए हम यह मानकर बैठ गये हैं कि हमनें सब पा लिया है। यह भ्रम हम पाल सकते थे, अगर दुनिया के सम्पर्क में हम न आये होते। **अपने-अपने कुएं में हर आदमी यह सोच सकता है कि उसने सब पा लिया है।** अपने कुएं में बन्द अपनी संस्कृति, अपनी सभ्यता के घेरे में घिरे हुए इस बात को मानने में बहुत कठिनाई नहीं थी कि हम पूर्ण हो गए हैं। लेकिन चारों तरफ दुनिया की हवाओं ने हमारी पूर्णता की नींद को बुरी तरह तोड़ दिया है हजार वर्ष की लम्बी गुलामी ने हमें यह भी बता दिया है कि हमारी शक्ति कितनी है, सैकड़ों वर्ष की दरिद्रता ने हमें यह भी बता दिया है कि हमारी समृद्धि, हमारी सम्पदा कितनी है, दुनिया भर के सामने भीख मांगकर हम किसी भांति जिन्दा हैं, उसने हमें यह भी बता दिया है कि हमारी समझ कितनी है। सारी दुनिया ने हमें एक ऐसी स्थिति में खड़ा कर दिया है जहां हमें यह एहसास करना अनिवार्य हो गया है कि हम बूढ़े हो गए हैं, पुराने हो गए हैं और नये हुए बिना जीवन का कोई रास्ता आगे नहीं हो सकता है।

लेकिन हम इसे इन्कार अगर करें तो हम इन्कार करते रह सकते हैं, हम मानते रह सकते हैं कि हम पूर्ण हो गए हैं। और डर यही है कि हजारों वर्ष की अपनी मान्यता को हम जिन्दगी के नये तथ्यों के सामने आंख बन्द करके मानते ही चले जायें उस हालत में सिवाय मृत्यु के भारत के सामने कोई रास्ता नहीं रह जाएगा। और इसे मृत्यु कहना भी ठीक न होगा। इसे आत्मघात, सुसाइड कहना ही ठीक होगा। क्योंकि इसके लिए और कोई जिम्मेवार नहीं है, हम ही जिम्मेवार होंगे।

दूसरी बात, भारत ने कभी भी नये को स्वीकृति नहीं की है। असल में भारत मानता ही नहीं रहा कि पृथ्वी पर कुछ नया भी होता है। हम मानते रहे हैं, पृथ्वी पर चांद तारों के नीचे जो भी है सब पुराना है। इसीलिए भारत ने इतिहास नहीं लिखा, हिस्ट्री नहीं लिखी। हमें कोई हिस्ट्रोरिक सेंस, इतिहास का बोध ही नहीं है। न लिखने का कारण था, क्योंकि अगर दुनिया में नयी चीजें घटती हों तो इतिहास लिखने का कोई अर्थ है। क्योंकि-पुरानी चीजें दोबारा नहीं घटेंगी, उनकी स्मृति रखनी जरूरी है। लेकिन

अगर वही वही चीजें रोज रोज घटती हों तो इतिहास बेमानी है । इसलिए भारत ने कोई इतिहास नहीं लिखा । न तो हम राम के बाबत निश्चित हो सकते हैं कि वे कभी हुए, न हम कभी कृष्ण के बाबत निश्चित हो सकते हैं कि वे कभी हुए । हम कभी सुनिश्चित रूप से घोषणा नहीं कर सकते, क्योंकि हमने कोई इतिहास लिखकर नहीं रखा । नहीं रखा, इसीलिए कि जो बातें बार-बार होनी हैं उनके लिए लिखने की क्या जरूरत है ।

जब सभी कुछ पुराना है पृथ्वी पर तो इतिहास की कोई जरूरत नहीं है । इतिहास को जरूरत तो केवल उन लोगों को है जो मानते हैं कि पुराना दोबारा नहीं घटेगा, रोज सब नया होता चला जाएगा । इसलिए पुराने की स्मृति को संरक्षित रखना जरूरी है । हम तो पुराने को ही संरक्षित किए हुए हैं तो पुराने की स्मृति को संरक्षित करने की क्या जरूरत है । इसलिए हमने कभी इतिहास नहीं लिखा और हमारे सामने भविष्य की कभी कोई दृष्टि नहीं रही । हमारे सामने अतीत ही सबकुछ रहा, भविष्य हमारे लिए अर्थहीन है । अर्थ हैं तो अतीत में है, वह जो बीत गया । क्यों ? क्योंकि जो बीत गया वही बीतता रहेगा बार-बार भविष्य में, कुछ भी नया छिपा नहीं है जो हमारे लिए प्रगट होगा । इस मानसिक व्यवस्था से हम पुराने रहने की तैयारी जुटाए रखें हैं। हम पुराने थे लेकिन हमें पता नहीं चलता था ।

गरीबी भी तब पता चलती है जब हम किसी अमीरी के निकट आ जायें और कुरूपता का भी बोध तब होता है जब सौन्दर्य पास खड़ा हो जाय । और सफेद रेखाएं काले ब्लैक बोर्ड पर दिखाई पड़नी शुरू होती हैं । चारों तरफ सारी दुनिया नयी हो गई है । सब कुछ नया हो गया है। उसके बीच हम एक म्यूजियम की भांति पुराने रह गये हैं । जहां भी आंख उठाते हैं वहीं फौरन पता लगता है कि हम पुराने पड़ गए हैं । अब हमारे बीच जिनकी बुद्धि शुतुर्मुर्ग जैसी है और वैसे बुद्धिमान लोग हमारे बीच बड़ी तादाद में हैं तो हम जानते हैं कि शुतुर्मुर्ग का अपना लॉजिक है । अगर दुश्मन उस पर हमला कर रहा हो तो वह सिर को रेत में गड़ाकर खड़ा हो जाता है । जब उसका सिर रेत में गड़ जाता है तो उसे दिखाई नहीं पड़ता है कि दुश्मन सामने है । और शुतुर्मुर्ग का तर्क यह है कि जब दुश्मन दिखाई नहीं पड़ता तो दुश्मन है नहीं । लेकिन दुश्मन नहीं दिखाई पड़ने से मिट नहीं जाता । बल्कि **दिखाई पड़त हुए दुश्मन से तो हम सुरक्षा का उपाय कर सकते हैं, संघर्ष कर सकते हैं, न दिखाई**

पड़न वाले दुश्मन के हाथ में हम निहत्थे हो जाते हैं, निशस्त्र हो जाते हैं। और दुश्मन पूरी ताकत हमारी आंख बन्द होने की वजह से पा जाता है।

भारत में जिन्हें हम बुद्धिमान लोग कहते हैं वे सारे बुद्धिमान शुतुर्मुर्गी तर्क में विश्वास करते हैं। वे मानते हैं, देखो मत चारों तरफ, आंख बन्द रखो तो हम अपने पुराने सपने में खोए रह सकते हैं। और हम कह सकते हैं कि हम पुराने नहीं हैं। इसलिए भारत में हजारों सैकड़ों साल तक परदेश जाने की पाबन्दी रखी, दूसरे देश जाने पर हमने अपने बच्चों पर रोक लगाई। रोक इसलिए लगाई कि दूसरे – देश में देखकर नये की सम्भावनाएं शुरू हो जाएंगी। सैकड़ों वर्ष तक हमने दूसरे के शास्त्र नहीं देखे, सैकड़ों वर्षों तक हमने दूसरे के दर्शन और दूसरे के विज्ञान पर आंख न डाली हम शुतुर्मुर्ग की तरह अपने सिर को खपाकर खड़े रहे लेकिन अब अजीब दुश्मन से पाला पड़ा है। वह शुतुर्मुर्ग की गर्दन को बाहर निकालकर उसको दर्शन दे रहा है और अब कोई उपाय नहीं है। हमें दर्शन करने ही पड़ेंगे।

यह जो दुनिया है बहुत अर्थों में छोटी हो गई है। मार्शल मैकलोहान ने एक शब्द का उपयोग किया है, वह ठीक है। उसका कहना है कि दुनिया अब एक ग्लोबल विलेज है, एक जागतिक गांव हो गई है। एक छोटा गांव है। इसलिए अब पड़ोसियों से बचना मुश्किल है और चारों तरफ नयी होती जिन्दगी अब हमें पुराना न रहने देगी। अब दो ही उपाय हैं। या तो हम स्वीकार से और आनन्द से नये होने की तैयारी में लग जायं या हम जबर्दस्ती और परेशानी में नये बनाये जायेंगे। अगर हम नये बनाये जायेंगे तो वह दुखद होगा। अगर हम नये बनें तो वह सुखद हो सकता है। लेकिन अभी भी हम अपनी दलीलें दिये चले जाते हैं, अभी भी हम कहे चले जाते हैं कि हम जगत गुरू हैं। अभी भी हम कहे चले जाते हैं कि दुनिया हमारी तरफ देख रही है। अब भी हम कहे चले जाते हैं कि दुनिया को हमसे सीखना है हमसे दुनिया को सीखना पड़ेगा। यह बड़ी खतरनाक बातें हैं। यह असल में दुनिया से हमें न सीखना पड़े, इसकी तरकीब है। अगर दुनिया से हमें नहीं सीखना है तो हमें यह घोषणा करते ही रहनी चाहिए कि दुनिया हमारी तरफ देख रही है और दुनिया हमसे सीखने को आतुर है।

अगर दुनिया से हमें नहीं सीखना है तो हमें अपने मन में यह मजबूती

से पकड़े रहना चाहिए कि हम जगत गुरू हैं और सारी दुनिया में ज्ञान देने का ठेका हमारा है। लेकिन ध्यान रहे, इस ठेके में हम रोज अज्ञानी होते चले जाएंगे। इस ठेके में हम रोज दीनता और दरिद्रता में गिरते चले जायेंगे। बहुत कुछ है जो भारत को सोखना पड़ेगा बहुत कुछ है जो भारत को तोड़ना पड़ेगा और बहुत कुछ है जो नया निर्माण करना पड़ेगा ।

इस सम्बन्ध में दो तीन बातें स्मरणीय हैं। एलडफ हक्सले ने एक शब्द का निर्माण किया है और उसे कहा है कल्चर शाक। असल में दूसरी संस्कृति के सम्पर्क में जब हम आते हैं तो एक धक्का लगता है। अपरिचित संस्कृति का धक्का, जो उस धक्के को झेल लेता है और उस धक्के का मुकाबला कर लेता है वह सबल हो जाता है। जो उस धक्के से भाग खड़ा होता है, एस्केप कर जाता है, पीठ दिखा देता है, वह कमजोर हो जाता है। संस्कृति का धक्का तो ठीक ही है, हमें सारी विश्व संस्कृति का धक्का झेलना पड़ रहा है। **किसी एक संस्कृति से टक्कर नहीं है अब, अब सारे विश्व की आधुनिकता से हमारी** प्राचीनता की टक्कर है।

अगर एकाध संस्कृति से टक्कर होती तो शायद हम एस्केप कर जाते, हम आंख बन्द कर लेते और देखने से इन्कार कर देते। लेकिन अब सारी दुनिया से टक्कर है और वह टक्कर ऐसी नहीं है कि बातों और विचारों की हो। वह टक्कर अब जिन्दगी, पेट और रोजी और रोटी की भी है। उसे झुठलाया नहीं जा सकता, उसे इन्कार भी नहीं किया जा सकता। यह जो हमारा पुरानापन है यह पहली बार कांटे की तरह चुभना शुरू हुआ है। जो हमारी जिन्दगी में बूढ़ा हिस्सा है, जो पिछली पीढ़ी है, जो पुराने ख्याल के लोग हैं वे जोर से अपनी पुरानी बातों का शोरगुल मचाना शुरू करेंगे ताकि उन्हें नयी बातें सुनायी न पड़ें। वे बहरे बनने को कोशिश करेंगे। सुनी होगी आपने एक कहानी। एक आदमी था जिसने अपने कानों में घण्टे लटका रखे थे। वह अपने घण्टों को दिन रात बजाता था। वह राम का भक्त था और कृष्ण का नाम उसके कान में न चला जाय इसलिए उसने दोनों कानों में घण्टे लटका रखे थे। वह घण्टाकर्ण हो गया। वह अपने घण्टे बजाता रहता था ताकि कृष्ण का नाम सुनाई न पड़ जाय। हम करीब करीब घण्टाकर्ण की हालत में हैं।

जहाँतक पुरानी पीढ़ी का सम्बन्ध है वह अपने कान में घण्टे बजाती रहती है ताकि दुनिया भर की आवाजें सुनाई न पड़ जायें। यह बड़ी खतरनाक बात हो सकती है। नयी पीढ़ी इससे कम खतरनाक नहीं है। नई पढ़ी को पुरानी बातें न सुनाई पड़

जायं वह उसके लिए अपने कानों में घण्टे लटकाये हुए हैं । वह अपने घण्टे बजा रही है कि कोई 'राम' न सुनाई पड़ जाय, किसी को 'कृष्ण' न सुनाई पड़ जाय । पुरानी पीढी अपने कानों के घण्टे बजा रही है कि दुनिया में जो नयी आधुनिकता का एक्सप्लोजन हुआ है, जो नये ज्ञान का विस्कोट हुआ है वह पता न चल जाय । क्योंकि उसके पता चलने से उसके पैर के नीचे की जमीन खिसक जाएगी और नयी पीढ़ी उसकी प्रतिक्रिया में, रिएक्शन मे पुराने को सुनने को बिल्कुल राजी नहीं है ।

ध्यान रहे, यह दोनों ही बातें खतरनाक हैं। क्योंकि नयी पीढ़ी के पास कोई जड़ें नहीं होंगी और जिस पीढ़ी के पास जड़ें न हों, ध्यान रहे वह अगर फूल भी लाएंगी तो वे फूल प्लास्टिक और कागज के होंगे, असली फूल नहीं होंगे। और पुरानी पीढ़ी ख्याल रखे, अगर उसके पास नये फूल खिलाने की क्षमता नहीं है तो अकेली जड़ें बहुत कुरूप और बहुत भद्दी और बेमानी हैं। और सिर्फ बोझ बन जाती हैं। **अकेली जड़ों का कोई मूल्य नहीं है । जड़ों की सार्थकता इसमें है कि वे रोज नये फूलों को जन्म दे सकें ।** जड़ें अपने में तो कुरूप होती हैं लेकिन सुन्दर फूलों को जन्म देने की क्षमता होती है तो जड़ें जीवित होती हैं । पुरानी पीढ़ी, पुरानी जड़ों को पकड़कर बैठी है और नये फूलों से डरी हुई है । जड़ें भी सड़ेंगी, पुरानी पीढ़ी भी सड़ जाएगी ।

नयी पीढ़ी पुरानी पीढ़ी की बगावत और खिलाफत म जड़ों को इन्कार करती है और सिर्फ नये फूलों को लिये बैठी है। उसके फूल उधार, उसके फूल मांगे हुए, उसके फूल दूसरे से लिये गये बासे सेकण्ड-हैण्ड ही हो सकते हैं। जो फूल पश्चिम में खिलते हैं वैसे फूल हमारे यहां खिलें, यह तो उचित है लेकिन उन्हीं फूलों को हम हाथ में लिये बैठे रहें, यह उचित नहीं है । जो फूल सारी दुनिया में खिल रहे हैं वे हमारी जमीन में भी खिलें, यह तो सौभाग्य होगा । लेकिन हम उन फूलों को उधार ले आयें और अपने घरों के गुलदस्तों में सजा कर बैठ जायें, इससे हम अपनी दीनता को थोड़ी बहुत र के लिए छिपा सकते हैं, लेकिन मिटा नहीं सकते । हिन्दुस्तान की तकलीफ और हिन्दुस्तान की जिद यह है कि पुरानी पीढ़ी जड़ों को पकड़े है और फूलों को इन्कार कर रही है और नयी पीढी फूलों को स्वीकार करती है और जड़ों को इन्कार करती है । ये दोनों ही खतरनाक वृत्तियाँ हैं। और मुझे एसे बहुत कम लोग दिखाई पड़ते हैं जो इन दोनों वृत्तियों से भिन्न हों ।

एकतरफ जगद्गुरु शंकराचार्य और उनके अनुयायी है और दूसरी तरफ नक्स-लाइट हैं। ये एक ही तरह के लोग हैं। इनमें बहुत फर्क नहीं है। और मजा यह है कि इन दोनों में ही चुनाव करना पड़े हमें, ऐसी स्थिति बना दी है। या तो कुआं चुनो या खाई चुनो। ये दोनों बातें खतरनाक हैं।

पहली बात तो यह समझ लेनी जरुरी है कि नया भारत अगर नया होगा तो अपनी पुरानी जड़ों को आत्मसात करके होगा। नया भारत अगर नया होगा तो भारत रहते हुए नया होगा। अगर भारत न रह जाय और नया हो जाय तो उसको नया भारत कहने को कोई जरुरत नहीं। **पुरानी जड़ों को आत्मसात करना होगा और कोई भी कौम अपनी पुरानी जड़ों के बिना बिल्कुल नहीं जी सकती**। कोई भी वृक्ष नहीं जी सकता, कोई कौम भी नहीं जी सकती। और एक बार हम अपनी सारी जड़ों को इन्कार कर दें तो हम हार हाऊस के पौधे हो सकते हैं। लेकिन हम जिन्दगी के तूफानों को झेलने योग्य नहीं रह जाएंगे। पुरानी जड़ों को आत्मसात करना होगा। पुरानी जड़ों को आत्मसात करने का अर्थ यह है कि भारत जो आज तक रहा है उस भारत के ऊपर ही नयी कलमें लगनी चाहिए। उस पूरे भारत को इन्कार कर देने से नयी कलमें नहीं लगेंगी। हम सिर्फ उधार और पंगु हो जाएंगे। हम जमीन के भिखमंगे हो जाएंगे।

पुराने आदमी के साथ खतरा यह है कि वह पुराने के लिए तो राजी है लेकिन नये अंकुर निकले, नये फूल लगें उनके लिए राजी नहीं है। नये आदमी के साथ खतरा यह है कि वह नये के लिए तो राजी है लेकिन पुरानी जड़ों को आत्मसात की करने उसकी जरा भी इच्छा नहीं है। वह इतना भयभीत है कि पुराने के साथ नया कैसे हो सकेगा, लेकिन ध्यान रहे पुराने और नये में दुश्मनी नहीं है। पुराना ही नया होता है। पुराना और नया दो विरोध चीजें नहीं है। पुराना ही विकसित होता है और नया होता है। असल में जब एक आदमी बूढा हो जाता है तो हमें दिखाई नहीं पड़ता कि यह बूढा आदमी नया होगा। यह तो मर जाएगा लेकिन वे जो नये बच्चे हमें दिखाई पड़ रहे है वे इस बूढे की ही प्रतिमाएं हैं, प्रतिरूप हैं। यह बूढ़ा मरने के पहले नये बीज बो जाता है।

असल में सब नये बच्चे पुराने बूढों से पैदा होते हैं। सब दिया पुराने से जन्म पाता है। पुराने और नये के बीच कोई दुश्मनी नहीं है। पुराने

और नये के बीच बाप और बेटे का संबंध है लेकिन बाप और बेटे के बीच ही कोई संबंध नहीं रह गया है। तो पुराने और नये के बीच कैसे संबंध रह पायेगा। बाप और बेटा दो क्लासेस नहीं है, बाप और बेटा दो वर्ग नहीं है। बाप और बेटे के बीच कोई कांफ्लिक्ट, कोई संघर्ष नहीं है और अगर है तो उसका मतलब है कि बाप और बेटे के बीच बाप और बेटे का संबंध नहीं रहा है। बाप और बेटे के बीच एक प्रवाह है। असल में बेटा फिर से बाप को नये अर्थो में जगत में प्रवेश दे रहा है। अगर में इस जमीन पर संभव हो पाया हूं तो मेरे पीछे हजारों, लाखों वर्षो की यथार्थता है।

अगर आप इस जमीन पर पैदा हो पाये है तो हजारो पीढियों ने आपको पैदा किया है। आप अपने पिता भी है, उनके पिता भी है, उनके पिता भी है। आपकी मां भी है, उनकी मां भी है उनकी मां भी है। आप इन सबके साथ संयुक्त है। असल में वे पुराने हो गये थे इसलिए उनका जो हिस्सा नया हो सकता था उसे छोडकर वे विदा हो गये है और वह नया हिस्सा जीवन को चला रहा है। पुराना ही रोज नया हो रहा है और ध्यान रहे, नया ही रोज पुराना भी हो रहा है। कोई पुराना ऐसा नहीं है जो कभी नया न रहा हो और कोई नया ऐसा नहीं है जो कल पुराना न हो जाय। इसलिए नये और पुराने के बीच दुश्मनी का ख्याल खतरनाक है। नये और पुराने के बीच एक प्रवाह है, एक गति है, अंतर संबंध है, एक यात्रा है, एक प्रोसेस है। असल में पुराना प्रारंभ बिन्दु है, नया अंत बिन्दु है। जैसे जन्म और मृत्यु आपतौर से दिखायी पड़ते हैं कि दो चीजें है लेकिन दो चीजें नहीं है। जन्म ही विकसित होते होते मौत बन जाती है और जो लोग जानते हैं, वें कहेगें, मौत ही विकसित होते होते फिर नया जन्म बन जाती है।

पहली-बात जो में आपसे कहना चाहता हूं, भारत अगर एक नया भारत होना चाहता है तो उसे बड़ा अद्भूत काम करना है, उसे एक बड़ा बेलेंसिग ऐक्ट करना है, एक बड़ी संतुलन की व्यवस्था करनी है। कभी अगर रस्सी के ऊपर चलते हुए नट को देखा हो, तो भारत का भविष्य बिल्कुल रस्सी पर चलते हुए नट जैसा होगा जिसे पूरे समय दोनों तरफ गिरने से बचाना है अपने को। गिरना आसान है क्योंकि गिरते ही फिर संतुलन के श्रम करने की जरूरत न रह जायेगी। पुराने के तरफे भी गिर जाना आसान है, नये

की तरफ भी गिर जाना आसान है लेकिन इस जीवन की रस्सी पर संध के के चलना कठिन है ।

मुझे ऐसा निरंतर डर लगता है कि पुरानी पीढ़ी पुराने की तरफ गिर कर संतुलन के लिए जो श्रम करता है, उसकी फिक्र छोड़ देती है, नयी पीढ़ी नये की तरफ गिर के संतुलन के जो प्रयत्न करना है, उसका प्रयत्न छोड़ देती है । इन दोनों में बहुत फर्क नहीं है । ये दोनों सन्तुलन के श्रम से बचने की कोशिश में लगे हैं । भारत को नया वे लोग कर पाएंगे जो इन दोनों चुनावों को इन्कार कर दें और जो बीच में, बैलेन्स में, सन्तुलन में खड़े होने के लिए राजी हो जायं । असल में वह जो गोल्डन मीन है, वह जो बीच है, वह जो मध्य है वही जीवन है । सदा ही । सदा दो अतियों के बीच मध्य को चुन लेना बुद्धिमानी है ।

सुना है मैंनें, कन्फ्यूसस एक गांव में गया और उस गांव के बाहर ही, गांव में प्रवेश करने के पहले एक आदमी उसे मिल गया और उस आदमी ने कहा, आप जरूर हमारे गांव में आयें । हमारे गांव में भी एक बहुत बुद्धिमान आदमी है। आप उससे मिलकर बहुत खुश होंगे । कन्फ्यूसस ने कहा, उसे तुम बहुत बुद्धिमान क्यों कहते हो? अगर तुम मुझे उसके सम्बन्ध में बता दो तो अच्छा होगा । तब उस आदमी ने कहा, वह इतना बुद्धिमान है कि एक कदम रखने के पहले तीन बार सोचता है । कन्फ्यूसस ने कहा तो फिर मैं उससे नहीं मिलूंगा । उस आदमी ने पूछा क्यों ? कन्फ्यूसस ने कहा कि अगर वह एक ही बार सोचता होता तो मैं कहता वह थोड़ा कम बुद्धिमान है । अगर वह तीन बार सोचता है तो मैं कहूंगा वह थोड़ा ज्यादा बुद्धिमान है । अगर वह दो ही बार सोचता होता तो मैं कहता वह बुद्धिमान है । और कम बुद्धिमान भी खतरे में पड़ जाते हैं और ज्यादा बुद्धिमान भी खतरे में पड़ जाते हैं । **असल में बुद्धिमान होना एक सन्तुलन है । अति बुद्धि से भी बचना पड़ता है और अति अबुद्धि से भी बचना पड़ता है । असल में दो (अति) एक्स्ट्रीम्स से बच जाना बुद्धिमानी है ।**

तो कन्फ्यूसस ने कहा, मैं नहीं मिलूंगा । क्योंकि वह अगर तीन बार सोचता है तो थोड़ा जरा ज्यादा हो गई है बात । जरा पेंडुलम ज्यादा घूम गया आगे की तरफ । घड़ी है, उसमें बायें से दायें पेंडुलम भागता रहता है।

ठीक हमारा मन भी ऐसा ही भागता रहता है । पुराने से हम नये पर जा सकते हैं और नये से हम पुराने पर जा सकते हैं । लेकिन जिन्दगी बीच में है और जो बीच में होता है उसको बड़े फायदे हैं। क्योंकि वह पुराने के भी उतने ही निकट होता है जितना नये के निकट होता है। वह पुराने से भी उतना ही दूर होता है जितना नये से दूर होता है । उसके लिए चुनाव आसान है । और जो बीच में होता है वह रिऐक्शनरी नहीं होता है । वह किसी चीज के खिलाफ नहीं जा रहा होता है ।

एक और बड़े मजे की बात है कि जब घड़ी का पेंडुलम बायें से दायी तरफ जाता है तो दिखाई तो पड़ता है उल्टा जा रहा है। लेकिन आपने कभी ख्याल न किया होगा । बायें से दायें तरफ जाता हुआ पेंडुलम फिर बायें तरफ आने की शक्ति को इकट्ठा कर रहा है । दायें से बायें तरफ जाता हुआ पेंडुलम मुवमेन्टम् इकट्ठा कर रहा है जो उसे फिर दायें तरफ ले जायेगा । तो बहुत कठिनाई नहीं है कि नक्सलाइट फिर शंकराचार्य का अनुयायी हो जाय । इसमें कोई बहुत फर्क नहीं है। एक्स्ट्रीम्स जो है इनमें विरोध दिखाई पड़ता है, वस्तुतः होता नहीं है । विपरीत से विपरीत पर जाना बहुत आसान है । इसलिए बहुत कामुक व्यक्ति ब्रह्मचारी हो सकता है । इसमें बहुत कठिनाई नहीं है। लेकिन बहुत कामुक व्यक्ति संयमी नहीं हो सकता । उसमें कठिनाई है । वह बहुत ज्यादा खाने के लिए पागल आदमी उपवास कर सकता है । उसमें ज्यादा कठिनाई नहीं है । लेकिन संयमित भोजन नहीं कर सकता है । उसमे बहुत कठिनाई है ।

एक अति से दूसरी अति पर जाना सदा सरल है। क्योंकि दूसरी भी अति है और पहली भी अति थी । एक एक्स्ट्रीम से दूसरी एक्स्ट्रीम पर जाना एकदम आसान है । एक्स्ट्रीमिस्ट माइंड को कोई कठिनाई नहीं है । लेकिन मध्य में रुकना बहुत कठिन है । भारत के सामने जो बड़े से बड़ा सवाल है वह यह है कि एक अति पुराने की और एक अति है नये की । एक अति है अति प्राचीन की और एक अति है अति नवीन की । इन दोनों के बीच अगर भारत ने चुनाव किया तो भारत नया भारत बन सकेगा। नया भारत जिसके आधार पर पुराने की सारी सम्पदा होगी । नया भारत, जिसकी जड़ों में पुरानी की सारी ताकत होगी । नया भारत, जो अपने अतीत से अपनी संस्कृति से टूट नहीं गया होगा ।

और अगर उसने दो में से किसी एक को चुना, अगर उसने पुराने को चुना तो भारत रोज रोज मरता जाएगा । क्योंकि सिर्फ अतीत के साथ कोई नहीं जी सकता । **जो कौम अपने अतीत को रोज भविष्य बना सकती है वही जीवित है । जो कौम सिर्फ अतीत को अतीत की तरह पकड़कर बैठ जाती है वह मर जाती है ।** या अगर भारत ने सिर्फ नये को चुना और अतीत को इन्कार कर दिया तो भारत बहुत कागजी, बहुत जापानी हो जाएगा। भारत बहुत ऊपरी हो जाएगा, बहुत सुपरफीसियल हो जाएगा । उसकी जिन्दगी की गहराई सब खो जाएगी । भारत ऊपर की लहरें बन जाएगा, उसके नीचे के सारे तल बिदा हो जाएंगे ।

और जो कौम अपने अतीत को पूरा इन्कार कर दे वह कौम हवा के थपेड़ों पर जीने लगती है । फिर हवा के कोई भी थपेड़े उसे बदलते रहेंगे । आज उसे कम्युनिज्म ठीक लगेगा, कल उसे फसिज्म ठीक लगेगा, परसों उसे डेमोक्रेसी ठीक लगेगी, आगे उसे डिक्टेटरशिप ठीक लगेगी, आज उसे ये कपड़े ठीक लगेंगे, कल उसे वह कपड़े ठीक लगेंगें, आज यह ज्ञान ठीक लगे-कल वह ज्ञान ठीक लगेगा । और कोई भी चीज उतनी ठीक नहीं लग पाएगी जो उसकी आत्मा बन जाए । सिर्फ उसके वस्त्र रह जायेंगे ।

एक नये भारत के लिए पहला मेरा ख्याल है वह यह है कि भारत को भारत रहते हुए नया होना है । बहुत आसान है भारत होना छोड़कर नया होना और यह भी बहुत आसान है, भारत रहकर भारत बने रहना और नया न होना । ये दोनों बातें बहुत आसान हैं । कठिनाई यहां है कि भारत, भारत रहे और नया हो जाय । इसका क्या अर्थ होगा ? इसका अर्थ यह होगा कि **भारत भविष्योन्मुख हो लेकिन अतीत-शत्रु न हो जाय** । इसका अर्थ होगा, भारत नया होने की तैयारी जुटाये लेकिन पुराने सारे अनुभव को साथ ले जा सके । इसका अर्थ यह होगा कि भारत सिर्फ इसलिए इन्कार न कर दे कि कोई चीज पुरानी है, और कोई चीज नयी है, इसलिए स्वीकार न कर ले ।

अबतक हमने ऐसा किया है, जो पुराना है वह ठीक है और जो नया है वह गलत है । हम एक अति पर जी रहे थे । पुराना सदा ठीक है, नया सदा गलत है, ऐसी हमारी धारणा है । इसलिए हर आदमी जिसको कोई चीज सही सिद्ध करनी हो, पहले उसे इस मुल्क में यह सिद्ध करना पड़ता

है कि वह कितनी पुरानी है । गीता अगर दो हजार साल पुरानी है तो थोड़ी कम सही हो जायेगी और अगर पांच हजार साल पुरानी है तो थोड़ी ज्यादा सही हो जायेगी और अगर पचास हजार साल पुरानी है तो और ज्यादा सही हो जायेगी और अगर वेद लाख साल पुराने हैं तो और ज्यादा सही हो जायेंगे, और अगर सनातन हैं, सदा से हैं तब तो उनके सही होने में कोई शक ही न रह जायेगा ।

इसलिए लोकमान्य तिलक पूरे समय कोशिश करते रहे कि वेद कमसे कम नब्बे हजार वर्ष पुराने सिद्ध हो जायें । क्योंकि अगर वेद नब्बे हजार वर्ष पुराना सिद्ध हो गये तो फिर बहुत ज्यादा सही हो जायेंगे । लेकिन कोई चीज पुराने होने से सही नहीं होती । अब बहुत खतरा है कि हम दूसरी अति पर चले जायें कि जो नया है वही सही है । नहीं, कोई चीज नये होने से ही सही नहीं होती । **सही होना एक अलग बात है जिसके लिए नया और पुराना होना संदर्भ के बाहर है, इरीलेवेंट है ।**

अगर भारत को विकसित होना है तो उसे पुरानी भूल छोड़नी पड़ेगी कि पुराना होने से कुछ सही है, और नयी भूल पकड़ने से बचना पड़ेगा कि कोई चीज नये होने से सही है । भारत को खोजना पड़ेगा कि सही क्या है ? अगर वह पुराना है तो भी सही है, अगर वह नया है तो भी सही है और अगर हम सही को खोज करके जिंदगी को बनाने की कोशिश किये तो भारत पुराने से टूटेगा और नया हो जाएगा । अगर हमने नये को सही मानना शुरू किया तो पुराने से टूट ही जाना पड़ेगा क्योंकि पुराना फिर गलत हो जाता है, पुराने का अर्थ हो जाता है गलत । जो पुराना है वह गलत है ।

पश्चिम उल्टी अति पर जी रहा है । पश्चिम में अगर किसी व्यक्ति को कोई किताब कीमती है, यह सिद्ध करना हो तो उसे यह सिद्ध करना पड़ता है कि यह बिल्कुल नयी है । यह बात अभी तक लिखी ही नहीं गयी है । अगर किसी की किताब को कोई सिद्ध कर दे कि यह तो पहले भी लिखी गयी है तो वह किताब बेकार हो गयी, उसका कोई मतलब न रहा । इसलिए हर लेखक को यह सिद्ध करना पड़ता है कि वह मौलिक है, ओरीजनल है । ओरिजनल होने की कोशिश में कई बेवकूफियां भी करनी पड़ती हैं, क्योंकि आदमी इतने समय से पृथ्वी पर है कि ओरीजनल होना आसान

मामला नहीं है ।

अगर आप एक खूबसूरत औरत बनाते हैं तो बहुत बार खूबसूरत औरत का चित्र बनाया जा चुका है। शायद ही संभव है कि हम कोई नयी खूबसूरती औरत में खोज सकें, तो फिर क्या करना पड़ें ? तो फिर पिकासो जैसे चित्र बनाने पड़ें कि औरत के हाथ की जगह टांग लगानी पड़े और आंख की जगह कान लगाना पड़े, तब वह ओरीजनल हो जाय । लेकिन वह औरत नहीं रह गयी, ओरीजनल तो हो गयी । पिकासो की पेंगिट की इज्जत पश्चिम में बनी, क्योंकि वह बिल्कुल नयी थी । उनमें पुराना कुछ भी नहीं था । लेकिन पिकासो ने अभी आखिरी दिनों में एक बात कहकर उसके भक्तों को बड़ी मुश्किल में डाल दिया । उसकी साठवीं वर्षगांठ पर उससे किसी ने पूछा कि आप जैसा मौलिक आदमी कोई भी नहीं है, तो पिकासो ने कहा "आई वाज जस्ट बीफूलिंग द मैनकाइंड ।" मैं तो सिर्फ आदमियों को बेवकूफ बना रहा था । पिकासो के इस एक वचन ने सारे पश्चिम की मौलिकता को कठिनाई में डाल दिया । बड़ी हैरानी हो गयी, क्योंकि स्त्री के चेहरे में चांद तो देखा गया था, स्त्री की आंखों में कमल देखा गया था, लेकिन स्त्री की आंखों में छिपकली कभी नहीं देखी गयी थी । उसको आधुनिक कवि ने देख लिया । लेकिन पिकासो ने जब यह कहा कि मैं सिर्फ लोगों को मूर्ख बना रहा था तो बड़ा सदमा पहुंचा है पश्चिम को ।

असल में अगर नया ही सही है तो नया एब्सर्डिटी में ले जायेगा, मूर्खता में ले जायेगा क्योंकि बुद्धिमत्ता हजारों साल का निचोड़ होती है । विसडम और नालेज में यही फर्क है । **नालेज नयी हो सकती है, विसडम सदा ही पुरानी होती है । ज्ञान और प्रज्ञा में यही फर्क है, ज्ञान सदा ही नया होना चाहिए नहीं तो उसको ज्ञान कहना बेमानी है । लेकिन प्रज्ञा, बुद्धिमत्ता, विसडम सदा पुरानी होगी ।** इस लिए जवान आदमी ज्ञान को उपलब्ध हो सकता है लेकिन विसडम तो सिर्फ बूढ़ा आदमी ही उपलब्ध हो सकता है । जवान आदमी बुद्धिमान को उपलब्ध नहीं हो सकता ।

हेनरी फोर्ड ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि जिस दिन पचास साल से कम उम्र के लोग हुकूमत करने लगेंगे उस दिन दुनिया में बड़े खतरे हो जायेंगे, खतरे हो ही जायेंगे लेकिन हेनरी फोर्ड को पता नहीं है कि पचास साल से कम उम्र के लोग हुकूमत करके जितना खतरा पहुंचायेंगे, पचास साल से

कम के लोग दुनिया में शिक्षक होकर उससे भी ज्यादा खतरा पहुंचाते हैं। **असल में शिक्षक होने योग्य बुद्धिमत्ता अनुभव से झरती है।** हां, अन्वेषक होने योग्य बुद्धिमत्ता इनवेंटर और डिस्कवरी होने योग्य ज्ञान युवा चित्त से उपलब्ध होता है। इसलिए बूढ़े दुनिया में आविष्कार नहीं करते, सारे आविष्कार करीब करीब पैंतीस साल के आस पास पूरे हो जाते हैं। **मनुष्य की सारी बड़ी खोजें नयी उम्र की खोजें नयी उम्र की खोजें हैं लेकिन मनुष्य के जीवन के सारे अनुभव वृद्ध के अनुभव हैं।** जब मैं कहा रहा हूं पुराने और नये के बीच सेतु, तो मैं यह कहा रहा हूं कि बूढ़े और जवान के बीच सेतु, बूढ़े और जवान के बीच एक ब्रिज चाहिए।

यह संभव हो सकता है। यह संभव कैसे होगा ? हम किन दिशाओं में सोचना शुरू करें कि यह संभव हो जाय। दो तीन दिशाएं मैं आपको सुझाना चाहूंगा। एक, भारत के पुरानेपन की बुनियादी भूल क्या थी, यह समझ लें तो भारत के नये पन की बुनियादी सुधार क्या होगा, यह हमारी समझ में आ सकता है। भारत के पुरानेपन की एक बहुत बुनियादी भूल थी और वह बुनियादी भूल यह थी कि हम जीवन को अस्वीकार कर दिये थे, हमने जीवन को कभी स्वीकार नहीं किया, हम जीवन के शत्रु रहे। **हमारे मन में स्वीकृति है स्वर्ग की, मोक्ष की।** हमारे मन में स्वीकृति है मृत्यु के बाद की। मृत्यु के पहले हम मजबूरी में जी रहे हैं, नेसेसरी ईविल की तरह।

यह जो जीवन है हमारा,यह हमारे मन में निन्दा से भरा हुआ है, कन्डेम्ड है। इस जिन्दगी में सिर्फ हम पाप की वजह से भेजे गये हैं, पाप का भुगतान करने के लिए। यह जिन्दगी हमारे पाप कर्मो का फल है और जो इस जिन्दगी में शुभ कर्मो को उपलब्ध हो जायगा उसको वापस नहीं जन्मना पड़ेगा। हमने जिन्दगी की बड़ी गंदी तस्वीर खींच रखी है, हम जिन्दगी को शत्रु की तरह देख रहे हैं, कारागृह की तरह, दंड की तरह, पाप की तरह। **और जो कौम जिन्दगी को पाप की तरह देखेगी, दंड की तरह देखेगी, जो कौम जिन्दगी को अपराध की तरह देखेगी और जो कॉम जिन्दगी से भागने के लिए उत्सुक होगी वह जिन्दगी को सुन्दर और समद्ध नहीं बना सकती।**

कोई पांगल कैदी ही होगा कि कारागृह की दीवालों को सुंदर बनाने

की कोशिश करे। कारागृह का कोई पागल कैदी ही होगा कि उसके सीखचों पर रंगीन कागज चढ़ाये, कोई पागल कैदी होगा कि अपने हाथ की जंजीरों को सोने से मढ़े। नहीं, कोई नहीं मढ़ेगा। जिन जंजीरों को तोड़ना है उन्हें सोने से मढ़ने की कोई जरूरत नहीं है और जिन सीखचों को तोड़कर बाहर निकल जाना है उन सीखचों को सुन्दर बनाने से वे और मजबूत हो जाते हैं और जिस कारागृह से भागना है उस कारागृह की दीवालें पुती हैं, नहीं पुती हैं, स्वच्छ हैं, नहीं स्वच्छ हैं, इससे क्या प्रयोजन है।

भारत जिन्दगी को जेलखाने की तरह ले रहा है, लेता रहा है। इससे नुकसान हुए हैं, इसके नुकसान के कारण ही हम कमजोर हुए। इस वृत्ति के कारण ही हम विज्ञान नहीं खोज सके, इस वृत्ति के कारण ही हम जिन्दगी को संपन्न, समृद्ध शक्तिशाली न बना सके। इस वृत्ति के कारण हम गुलाम हो गये, इस वृत्तिके कारण हमने भूखे रहने को भी सांत्वना बना लिया, इस वृत्ति के कारण हमने उम्र न बढ़ायी, स्वास्थ्य न बढ़ाया और सौंदर्य न बढ़ाया। इस वृत्ति ने हमें अत्यंत दीन बना दिया है सब दृष्टियों से। **भारत के पुराने मन की जो बुनियादी भूल है वह जीवन को आल्हादपूर्व स्वीकार न करना, जीवन को दुखपूर्वक स्वीकार करना।**

भारत का पुराना मन पेसिमेस्टिक है, निराशावादी है। वह कह रहा जीवन दुख है, कह रहा है जीवन छोड़ देने जैसा है। जीवन आवागमन से मुक्ति के लिए सिर्फ एक अवसर है। अगर भारत कभी भगवान के सामने भी हाथ जोड़कर खड़ा है तो इसीलिए कि कब जीवन से छुटकारा मिले। यह हमारे चित्त की दशा निश्चित ही जिम्मेवार हुई है। भारत जैसी बड़ी सम्पतिवाला देश, जिसके पास बड़े स्रोत थे, वह उन स्रोतों का कोई उपयोग नहीं कर पाया। भारत जैसी विराट संख्यावाला देश जिसके पास बड़ी शक्ति थी वह उतनी बड़ी शक्ति के रहते हुए गुलाम बन सका। बहुत छोटी ताकत की कौमें भारत पर हावी हो गईं, क्योंकि भारत के मन ने संकोच को स्वीकार कर लिया, विस्तार को इन्कार कर दिया।

असल में कोई जिम्मेवार नहीं है इस देश को गुलाम बनाने के लिए। हम गुलाम बनने के लिए इतने तत्पर थे कि अगर हमें कोई गुलाम न बनाता तो ही आश्चर्य होता। कोई जिम्मेदार नहीं है हमको गरीब बनाने के लिए।

लेकिन हम इतने प्रसन्न हैं गरीब बन जाने में कि जिन्होंने हमें गरीब बनाया है हम उनके लिए हजार हजार धन्यवाद से भरे हुए हैं। दीनता और दरिद्रता और दासता हमें स्वीकृत है । और जब हम दीन हुए, दास हुए, परेशांन हुए तो हमारा सिद्धान्त और अटल हो गया है कि जिन्दगी दुख है । हमने कहा कि ऋषि मुनियों ने ठीक ही कहा है कि जिन्दगी दुख है । देख लो. जिन्दगी दुख है ।

हमने इस बात से लड़ने की कोशिश नहीं की, इस बात से हम बिल्कुल प्रसन्न हुए कि हमारे सब सिद्धान्त सही निकले । अब हमारे मुल्क में साधु सन्यासी लोगों को समझा रहे हैं कि यह कलियुग है और ऋषि मुनि पहले कह गये हैं कि लोग दुखी होंगे, मरेंगे, परेशान होंगे, भूखे रहेंगे । हम अपने शास्त्र को देखकर बहुत प्रसन्न हो रहे हैं कि हमारा शास्त्र कितना सही है कि कलि युग आ गया । यह कलियुग आने की वजह से शास्त्र में लिखा है ऐसा मैं नहीं मानता, यह शास्त्र में लिखा है इसलिए इस कलियुग को आने में आसानी हो गई है। क्योंकि हमने स्वीकार कर लिया है कि कलियुग आयेगा ही । अगर नहीं आता तो शायद हम दुखी होते, हम कहते कि ऋषि मुनि, और गलत हो सकते हैं ? सर्वज्ञ, जो सब जानते थे वे गलत हो सकते हैं ?

नहीं, इस दुनिया में कोई सब जानने वाला पैदा नहीं हुआ । और जिस कौम में सर्वज्ञ पैदा हो जाएंगे वह कौम अज्ञानी हो जाएगी । क्योंकि जानने को सदा शेष है । जानना रोज है। नयी खोज रोज करनी है । एक जो बुनियादी भूल मुझे दिखाई पड़ती है पुराने भारत की, जिसकी वजह से भारत नया नहीं हो सका वह यही है कि हम शरीर को इन्कार करते हैं, भौतिकता को इन्कार करते हैं, संसार को इन्कार करते हैं लेकिन ध्यान रहे जो संसार को इन्कार करता है वह परमात्मा तक नहीं पहुंच सकेगा ।

परमात्मा तक पहुंचने वाले सब रास्ते संसार से होकर गुजरते हैं । और जो आदमी यह कहेगा कि हम तो मन्दिर के स्वर्ण शिखरों को मानते हैं, हम नींव के गन्दे पत्थरों को नहीं मानते तो ध्यान रहे वह स्वर्ण शिखर रखे बैठा रहे, वह कभी मन्दिर पर चढेगा नहीं । बड़े मजे की बात है, जिन्दगी के बड़े राज की बात है कि अगर आप चाहें तो मन्दिर की नींव बनाकर छोड़ सकते हैं । मन्दिर के नींव के पत्थरों के लिए शिखर का होना अनिवार्य नहीं है । लेकिन मन्दिर का शिखर बिना नींव के पत्थर के नहीं हो

सकता । यह बड़े मजे की बात है कि जिन्दगी में निकृष्ट हो सकता है श्रेष्ठ के बिना । लेकिन श्रेष्ठ निकृष्ट के बिना नहीं हो सकता ।

असल में सब श्रेष्ठ को निकृष्ट पर ही आधार बनाना पड़ता है । निकृष्ट का मेरे मन में अर्थ ही यही है कि जो श्रेष्ठ का आधार बनता हो । निकृष्ट का मेरे मन में कोई कंडेमनेटरी, कोई निन्दात्मक अर्थ नहीं है । निकृष्ट का मतलब है कि जो नीचे होता है । लेकिन हर ऊंची चीज के लिए किसी को नीचे होना ही पड़ेगा । और मजे की बात यह है कि ऊंची चीज के बिना भी नीचा हो सकता है लेकिन नीची चीज के बिना ऊंचा नहीं हो सकता । आपका शरीर बिना आत्मा के भी दिखाई पड़ जाता है लेकिन आपकी आत्मा बिना शरीर के दिखाई नहीं पड़ती । एक आदमी मर जाता है तो हम देखते हैं, शरीर पड़ा रह गया है, आत्मा दिखाई नहीं पड़ती । लेकिन ऐसा नहीं मालूम होता है कि यह आत्मा खड़ी है, शरीर कहीं चला गया ।

शरीर आधार है, बुनियाद है । विज्ञान हो सकता है बिना धर्म के लेकिन धर्म बिना विज्ञान के नहीं हो सकता । सिर्फ बातचीत हो सकती है । तो हम धर्म की बातचीत कर रहे हैं । क्योंकि आधार हमारे पास नहीं है । एक आदमी का अगर पेट भरा हो तो जरूरी नहीं है कि वह कविता करे ही, एक आदमी का पेट भरा हो तो जरूरी नहीं है कि वह सितार बजाये ही । एक आदमी का पेट भरा हो तो जरूरी नही है कि भगवान की खोज करे ही । लेकिन एक आदमी का पेट खाली हो तो फिर पक्का है कि सितार न बज सकेगा, भगवान की खोज न कर सकेगा, गीत न गा सकेगा ।

गीत ऊंचाई है । पेट बड़ी नीची चीज है । लेकिन जो नीचे को इन्कार कर देते हैं उनकी ऊंचाइयां अपने आप नष्ट हो जाती हैं । इस देश ने निचाई को इन्कार करने की भूल की है और हम ऊंचाई को बचाने की कोशिश कर रहे हैं पांच हजार साल से । और जिसपर वह बच सकती थी, उस शरीर के हम दुश्मन थे । बल्कि हमारे शास्त्रों में कहा हुआ है कि जिसको आत्मा को पाना है उसको शरीर से लड़ना पड़ेगा । तो ठीक है जिसको मन्दिर के ऊपर स्वर्ण का शिखर चढ़ाना है उसे नींव के पत्थर उखाड़ने चाहिए । जरूर मन्दिर का शिखर रख दिया जाएगा लेकिन वह मन्दिर का शिखर, शिखर पर नहीं रखा जाएगा, वह जमीन की गन्दगी में पड़ा रहेगा । असल में मन्दिर के शिखर को बचाने के लिए कुछ पत्थरों को गन्दगी में खड़े रहने की तैयारी दिखानी पड़ती है । उन पत्थरों को आदर देना पड़ता है ।

क्योंकि उन पत्थरों के कारण ही शिखर आसमान पर उठ पाता है।

यह आत्मा की सारी सम्भावना शरीर के बिना सम्भव नहीं है। यह शरीर के कारण ही आत्मा ऊंचाइयां छू पाती है। लेकिन हम शरीर को धन्यवाद नहीं दे पाये। शरीर को हमने सताया जरूर, हम प्रेम न कर सके। इसलिए शरीर से जो हो सकता था वह नहीं हो पाया और शरीर के बिना जो हो ही नहीं सकता था उसकी हम बातचीत कर रहे हैं बैठकर। घरों में लोग आत्मा परमात्मा की बात करेगें लेकिन वह बातचीत होगी। ब्रह्म की चर्चा, चर्चा ही रह जायगी। वह ऐसे ही है जैसे कोई हवाई जहाज में उड़ने की बात करता हो लेकिन जहाज बनाने वाले कारखाने न हों, लोहा न हो, इंजीनियर न हो तो फिर घर में बैठ के बात की जा सकती है। आंख बन्द करके सपने देखे जा सकते हैं।

भारत धर्म के सपने देख रहा है। क्योंकि बिना विज्ञान के आधार के धर्म की ऊचाइयां छू ही नहीं जा सकतीं। भारत त्याग के सपने देख रहा है। क्योंकि त्याग केवल उनके ही लिए है जिनके पास कुछ हो। असल में त्याग गरीब आदमी की क्षमता नहीं है। **त्याग गरीब आदमी का सुख नहीं है, त्याग समृद्ध आदमी की आखिरी लक्जरी है।** वह आखिरी आनन्द है, आखिरी विलास है। असल में जब कोई महावीर या कोई बुद्ध अपने महल को लात मार के जंगल में चला जाता है तो आप यह मत सोचना कि यह उसी जगह पहुंच जाता है जहां जंगल का आदिवासी। क्योंकि आदिवासी जंगल में इसीलिए है कि महल नहीं बना सका और यह आदमी जंगल में अब इसलिए है कि महल बेमानी हो गए हैं। ये दोनों एक जगह खड़े होकर भी इनके बीच जमीन आसमान का फासला है। बुद्ध छोड़ सके—छोड़ वही सकता है जिसके पास है। और छोड़ने की क्षमता उस दिन आती है जिस दिन होने की क्षमता इतनी बढ़ जाती है कि अब और होने का मतलब नहीं रह जाता।

असल में गरीब देश त्यागी नहीं हो सकता सिर्फ त्याग की बातें कर सकता है। इसलिए हमारे त्यागी को भी अगर आप देखने जाएंगे तो उसकी पकड़ भी त्याग पर नहीं दिखाई पड़ेगी। अभी मैं एक संन्यासी के पास गया था। वहां बात चल रही है धर्म की, त्याग की लेकिन लोग रूपये चढ़ाते हैं, वह जल्दी से बात बन्द करके पहले रूपये को नीचे सरका देता हैं फिर ब्रह्म की चर्चा शुरू हो जाती है। बड़ी कठिन बात मालूम पड़ती है। रूपये के लिए ब्रह्म की चर्चा को भी रुकना पड़ता है। ठीक ही मालूम होता है, रुकना पड़ेगा, क्योंकि बिना रुपये के ब्रह्म की चर्चा भी नहीं हो सकती। इसमें मैं उन संन्यासी को दोष नहीं देता। उनके रूपये सरकाने को दोष नहीं देता। दोष देता हूं उनकी इस वृत्ति को कि इस रूपये के खिलाफ वे बोल

रहे हैं और इसी रुपये को सरका रहे हैं।

हिन्दुस्तान जैसा कृपण समाज खोजना मुश्किल है। और हिन्दुस्तान जैसा त्याग की बात करने वाला भी कोई समाज नहीं है। अब त्यागी और कृपण के बीच कोई संगति नहीं मालूम पड़ती। हिन्दुस्तान की कंजूसी और हिन्दुस्तान के त्याग की बातों के बीच कोई सम्बन्ध नहीं मालूम पड़ता। हिन्दुस्तान जैसा पदार्थवादी, मैटेरियलिस्ट मुल्क भी खोजना मुश्किल है। लेकिन हिन्दुस्तान जैसी स्प्रिट और स्प्रीचुअल्टी की बात करने वाला कोई नहीं है जमीन पर। मामला क्या है? गलती कहां हो गई? हमारा आदमी एकदम भौतिकवादी है। उसकी सारी चिन्तना भौतिकवाद के आसपास घूमती है। वह रात सपने में भी रूपये को देखता है और तिज़ोरी के पास ही सोता है और ताला भी लगाता है तो दोबारा हिलाकर देखता है कि चाभी ठीक से लग गई है कि नहीं लगी है। लेकिन मन्दिर जा रहा है।

मेरे सामने एक सज्जन रहते हैं। वे रोज सुबह मन्दिर जाते हैं। ताला लगाते हैं। फिर दस कदम वापस लौटकर ताले को हिलाकर देखते हैं। एक दिन मैं बैठा था तो मैंने उनसे कहा कि आप दोबारा ताले को हिलाकर क्यों देखते हैं? उन्होंने कहा कि अब आपने पूछ ही लिया, आपको संकोच की वजह से कई दफा में देख भी नहीं पाता। अब आपने पूछ ही लिया तो मुझे शक हो जाता है कि पता नहीं लगा है ठीक से कि नहीं लगा है। तो मैंने कहा सौ कदम चलकर फिर नही होता है शक? तो उन्होने कहा, होता है लेकिन हिम्मत नहीं जुटा पाता कि लोग क्या कहेंगे। और मैंने कहा, जब मन्दिर में भगवान के सामने खड़े होते हैं तो भगवान दिखाई पड़ता है कि ताला दिखाई पड़ता है। उन्होंने कहा, आपको कैसे पता चल गया। हैरानी की बात है। जल्दी जल्दी किसी तरह पूजा करके भागता हूं। दिखाई तो ताला ही पड़ता है। लेकिन मन्दिर में खड़े देखकर भ्रान्ति हो जाएगी कि यह आदमी भगवान के सामने खड़ा है।

यह आदमी पूरे वक्त तिजोरी के सामने खड़ा है। हमारा चित्त तो है भौतिक, होगा ही। लेकिन हमने भौतिक जिन्दगी की मांग पूरी नहीं की। मुझे इसमें कोई बुराई नहीं दिखाई पड़ती। यह स्वाभाविक है। लेकिन जब इसको हम इन्कार करते हैं तब रुग्णता शुरू हो जाती है। जो आदमी भूखा है वह अगर भगवान के सामने खड़ा हो और उसे भगवान न दिखाई पड़के रोटी दिखाई पड़े तो इसमें बुराई क्या है। उसे रोटी दिखाई पड़ेगी ही। कारण क्या है? इस आदमी ने रोटी की मांग पूरी नहीं की।

भारत ने आज की बुनियादी जरूरतों की मांग आजतक पूरी नहीं की। है भारत आज भी बुनियादी मामलों के बारे में अत्यंत असहाय और दीन है। न हमारे पास ठीक भोजन है, न ठीक कपड़े हैं। न ठीक शरीर है, न ठीक सौन्दर्य है हमारे पास कुछ भी नहीं है। जिन्दगी की जरूरी चोजें हमारे पास नहीं हैं। तब हम जिन्दगी की उन बातों की बातें करते हैं जो कि एक अर्थ में गैरजरूरी है। वह जरूरी नहीं बनती है। जब जरूरत को सब चीजें पूरी हो जायँ तब वह भी जरूरी बन जाती है, **किसी अशोक के लिए या किसी अकबर के लिए धर्म एक जरूरत हो जाती है, हो जानी चाहिए।** अकबर के लिए धर्म एक जरूरत है लेकिन हमारे लिए नहीं हो सकती। हमारी जरूरतें कुछ और हैं इसलिए हम भगवान के सामने भी जाते हैं तो कोई हाथ जोड़ के कहता है कि मेरे लड़के को नौकरी लगवा दो, कोई कहता है कि मेरी लड़की की शादी करवा दो, कोई कहता है मेरी पत्नी की बीमारी ठीक कर दो। हम भगवान के पास भी क्या मांगने जाते हैं। बहुत बेशर्म हैं हम।

जो काम हमें कर लेना चाहिए वह हम भगवान से मांगने जा रहे हैं। और जो हम नहीं कर सके, ध्यान रहे वह भगवान नहीं कर सकेगा। क्योंकि उस सबको करने की पूरी क्षमता उसने हमें दे दी है। अब उसकी कोई जिम्मेवारी नहीं है। रोटी हम पैदा कर सकते हैं, कपड़े हम पैदा कर सकते हैं, मकान हम बना सकते हैं। इसमें भगवान को बीच में लाकर कष्ट देने का कोई कारण नहीं है। लेकिन हम पांच हजार साल से कष्ट दिये जा रहे हैं। और अगर भगवान कहीं हमसे डर के छिप गया हो तो बहुत हैरानी की बात नहीं है। और अगर उसने अपने कानों का आपरेशन करवा लिया हो और हमारी प्रार्थना न सुनता हो तो उचित ही किया है नही तो वह पागल हो जाता। जो काम हम कर सकते हैं उसके लिए किसी और से कहने जाना नपुंसकता है, इम्पोटेंसी है।

असल में भगवान के सामने जाने का वह आदमी अधिकारी है जिसने अपनी जिन्दगी का काम पूरा कर दिया और भगवान के सामने पूछने गया है कि अब और क्या ? असल में और काम पूछने जो गया है भगवान के सामने – जो पूछने गया है कि जो हो सकता था वह हो गया है। और जो नहीं हो सकता है उसकी कुछ बात करें। जो पूछने गया है कि जिन्दगी का सारा काम निपटा दिया है, अब कोई काम है ? इस जिन्दगी के ऊपर ? जमीन की सारी बात पूरी हो गई है। आकाश की भी कोई बात है ? सारा का सारा इन्तजाम हो गया है। शरीर के ऊपर भी मनुष्य का कोई व्यक्तित्व है ? जो भगवान के मन्दिर के सारे काम, मन्दिर के बाहर के, पूरा करके पहुंचा है शायद

भगवान के काम उसके ही उपयोग में आ पाते हैं अन्यथा नहीं आ पाते ।

पुराना भारत शरीर के विरोध में अध्यात्मवादी था इसलिए वह शरीरवादी हो गया, अध्यात्मवादी नहीं हो पाया । नये भारत के साथ खतरा है । जो मैंने कहा कि कहीं वह पुराने की प्रतिक्रिया में अब निपट भौतिकवादी न हो जाय और कहे कि पांच हजार साल अध्यात्म की बकवास हो चुकी है, अब हम छोड़ना चाहते हैं । यह खतरा है और यह खतरा बहुत वाइटल है, बहुत जीवन्त है । यह खतरा बहुत ही ऐसा है कि शायद ही हम इससे बच सकें । अगर बच जायं तो सौभाग्य, न बच पायें तो किसी से शिकायत करने का भी कोई उपाय न होगा । क्योंकि पांच हजार साल से हम इतने परेशान हो गये हैं अध्यात्म की बात करते करते कि पेंडुलम अब मैटिरियलिज्म की तरफ घूम जाएगा । इसलिए हिन्दुस्तान के कम्युनिस्ट हो जाने की सम्भावना रोज बढ़ती जाएगी । उसके लिए हिन्दुस्तान के कम्युनिस्ट जिम्मेवार नहीं होंगे । हिन्दुस्तान को अगर कम्युनिस्ट बनायेंगे तो हिन्दुस्तान के पांच हजार साल के ऋषिमुनि उसके लिए जिम्मेवार होंगे क्योंकि उन्होंने इतनी बकवास की है अध्यात्म की कि हिन्दुस्तान के भी बच्चे अगर उनके खिलाफ चले जायें तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं है । यह रिएक्शन होगा । हिन्दुस्तान में कम्युनिज्म या हिन्दुस्तान में भौतिकवाद का रिव्होल्युशन नहीं होगा, रिएक्शन होगा । हिन्दुस्तान में कम्युनिज्म क्रान्ति नहीं है, प्रतिक्रिया है वह हिन्दुस्तान के पांच हजार साल की दुखद कहानी का विरोध है ।

अगर आज आपके बच्चे मन्दिर जाने से इन्कार कर रहे हैं तो ध्यान रखना बच्चे जिम्मेवार नहीं है, आप ही जिम्मेवार हैं । आपने मन्दिर ऐसा बनाया है जिसमें कोई बुनियाद नहीं है, जो मरा हुआ है, जिसमें जिन्दगी का कोई आधार नहीं है । अगर आपके बच्चे आपकी गीता को फेंक रहे हैं तो उसका कारण है । क्योंकि भूखे पेट पर रखी गई गीता सुख नहीं देती है, सिर्फ दुख देती है । उतारने की जरूरत पड़ जाती है । अगर आपके बच्चे अब मानने को राजी नहीं है कि कृष्ण बांसुरी बजाते रहे होंगे क्योंकि बांसुरी बजाने के लिए, जिन्दगी के लिए जितनी जरूरत है वह कोई भी पूरी होती दिखाई नहीं पड़ती तो अगर कृष्ण पर शक आ रहा हो आपके बच्चों को तो वे जिम्मेवार नहीं हैं, हमीं जिम्मेवार हैं । क्योंकि हमने जो हालत पैदा की है वह हालत प्रतिक्रिया में ले जानेवाली है ।

खतरा बहुत है । बड़े से बड़ा खतरा यह है कि हमने अध्यात्म के दुख झेल लिये, कहीं अब हमें भौतिकवाद के दुख न झेलने पड़े । कहीं ऐसा न हो कि हम अकेला शिखर लिये बैठे रहें और नींव न भरें । अब हम नींव भर के बैठ जांय

और मन्दिर न बनायें, इसका बहुत डर है। इसलिए **भारत को अध्यात्मवाद के नीचे भौतिकवाद की नींव देनी है। अध्यात्मवाद के खिलाफ भौतिकवाद का आन्दोलन नहीं करना है।** असल में भारत को अपने ऋषि मुनियों के लिए वह नींव देनी है जिसको वे खुद इन्कार करते रहे। असल में भारत को महावीर और बुद्ध के पैरों के नींचे आइंस्टीन और न्यूटन को खड़ा करना है। क्योंकि उनके बिना महावीर और बुद्ध अब खड़े नहीं रह सकते। उनकी मूर्तियां गिर जाएंगी और चूर चूर हो जाएंगी और मिट्टी में मिल जाएंगी और उनके ऊपर लोग जूते रखकर चलेंगे। और कोई उपाय नहीं रह जाएगा।

विज्ञान अगर भारत के मन का आधार बन जाय तो भारत की आत्मा धर्म की उड़ान ले सकती है। और मैं विज्ञान और धर्म में कोई विरोध नहीं देखता। लेकिन कठिनाई है। धार्मिक आदमी विरोध देखता है और विज्ञान पढ़ने वाला विद्यार्थी भी विरोध देखता है। धार्मिक आदमी मानता है कि विज्ञान की बातों ने धर्म नष्ट कर दिया। और वह विज्ञान की शिक्षा पानेवाला युवक मानता है कि धर्म की बकवास अन्धविश्वास है। इसका विज्ञान से क्या सम्बन्ध है। एक खाई, एक जनरेशन व्यर्थ पैदा हो रही है। हिन्दुस्थान में यह खाई जितनी बड़ी है उतनी दुनिया में कही भी नही हैं। पुरानी पीढ़ी और नयी पीढी के बीच इतनी बड़ी खाई हो रही है कि उसके आर पार हाथ फैलाने मुश्किल मालूम हो रहे हैं।

मैं नहीं जानता हूं कि ऐसे घर है जिनमें बाप और बेटे बैठकर बातें भी करते हों। कोई कम्युनिकेशन नहीं है। मैं सेकड़ों घरों में ठहरता हूं। बाप और बेटे बचकर निकलते हैं। या तो बाप को कोई उपदेश देना हो तब बेटे को दो मिनट रोकता है या बेटे को बाप की जेब से कुछ निकालना होता है तब वह दो मिनट के लिए मिलता है। लेकिन कोई कम्युनिकेशन नहीं है, कोई संवाद नहीं है, दोनों के बीच कोई सम्बन्ध नहीं रह गया है। बाप किसी और दुनिया का हिस्सा है, बेटा किसी और दुनिया का हिस्सा है। बेटी कहीं और जा रही है, मां कहीं और जा रही है। न मां बेटी की बात समझ पाती है, न बेटी मां की बात समझ पाती है। उनके पास कामन लेंग्वेज भी नहीं है, समान भाषा भी नहीं है जिसमें बातचीत हो सके। हिन्दुस्तान के साधू एक तरफ खड़े हैं और अपनी बातचीत जारी रखे हुए हैं। वे अपने पुराने की गुहार मचा रहें हैं। हिन्दुस्तान के जवान एक तरफ खड़े हुए हैं। वे अपनी बातचीत जारी रखे हुए हैं। वे अपनी बात चिल्ला रहे हैं और दोनों के बीच कोई बातचीत नहीं होती।

जुमू ने एक संस्मरण लिखा है कि उसके पागलखाने में दो प्रोफेसरों को इलाज के लिए लाया गया। असल में जो प्रोफेसर एकाध दफे इलाज के लिए न जाय वे थोड़े ठीक प्रोफेसर नहीं हैं ऐसा जानना ही चाहिए। दोनों का दिमाग खराब हो गया है। उन दोनों का जुमू अध्ययन करता है तो बड़ा हैरान हो जाता है। वह देखता है कि अपने कमरे में बैठे वे दोनों बातें करते हैं। बातें बड़ी ऊंची होती हैं लेकिन एक बड़ी अजीब बात है। जब एक प्रोफेसर बात करता है तब दूसरा चुप रहता है और जब दूसरा बात करता है तो पहला चुप रहता है। हालांकि उन दोनों की बात में कोई सम्बन्ध नहीं है। पहला अगर आकाश की बात करता है तो दूसरा जमीन की बात करता है। इनमें कोई संबंध नहीं है। खैर, दो पागलों के बीच में कोई बात का सम्बन्ध न हो यह समझ में आता है।

जुमू को दिक्कत यह होती है कि जब दोनों पागल हैं और बात में कोई सम्बन्ध नहीं है तब एक बोलता है तो दूसरा चुप क्यों हो जाता है। उसको बोलते रहना चाहिए। वह अन्दर जाता है और उनसे पूछता है कि मेरी समझ में आ गई है सब बात, एक बात समझ में नहीं आती कि जब एक बोलता है तो दूसरा चुप क्यों हो जाता है। तब वे दोनों हंसते हैं और कहते हैं कि क्या आप समझते हैं कि हमें कनवर्सेशन का नियम नहीं मालूम है। नियम हमें मालूम है। बातचीत का नियम यह है कि जब एक बोले तब तुम चुप रहो। जुमू कहता है कि जब तुम्हें इतना मालूम है बातचीत का नियम तब तुम्हें यह भी तो पता होना चाहिए कि जो एक बोल रहा है, तुम्हारे बोलने में उससे कुछ सम्बन्ध—मी तो हो, वह दोनों पागल हंसते हैं। **वे कहते हैं कि हम तो पागल हैं लेकिन हमने ऐसे आदमी ही नहीं देखे जिनका बातचीत में कोई सम्बन्ध हो।**

यह बात शायद उन पागलों के बाबत सही न हो, लेकिन इस वक्त इस मुल्क में यह सही हो गई है। बाप और बेटे की बातचीत में कोई सम्बन्ध नहीं है। दो पागलों की बातचीत है। गुरू और शिष्य के बीच कोई सम्बन्ध नहीं है, दो पागलों की बातचीत है। गुरू अपनी कहे चला जा रहा है, शिष्य अपनी कहे चला जा रहा है। गुरू ही बोल रहा है और वह खुद ही सुन रहा है। शिष्य बोल रहा है, वह खुद ही सुन रहा है। सुनने और बोलने का काम एक ही आदमी को खुद ही करना पड़ रहा है। बाप जो बोलता है बाप ही सुनता है, बेटा सुनता नहीं। जब बाप बोलता है तब बेटा इस तैयारी में होता है कि कैसे इस सुनने के दायरे के बाहर हो जाय। जब बेटा बोलता है तब बाप ऐसे सुनता है, जैसे कि यह बात नहीं सुनी होती तो अच्छा था। इन दोनों पीढ़ियों के बीच जो यह गैप है, यह गैप नये भारत के निर्माण में सबसे

बड़ी बाधा बनेगा ।

यह तो अंतराल है, यह अंतराल नये भारत को कैसे बनने देगा ? क्योंकि नये भारत को बनाना है नये लड़कों को, और नये भारत के लड़के अगर अपनी पुरानी पीढ़ियों के सारी समझ के बिना भारत को बनायेंगे तो भारत एक मैटीरियलिस्ट मुल्क होगा, एक भौतिकवादी मुल्क होगा, जिसमें अध्यात्म के लिए हमने सब आधार तोड़ दिये होंगे, जिसमें हमने अध्यात्म के लिए सब ओपनिंग खत्म कर दी होगी जिसमें हम अध्यात्म के लिए फूल नहीं खिलने देंगे । अगर सिर्फ नये लड़के भारत बनायेंगे तो भारत निपट शरीरवादी मुल्क होगा जिसमें आत्मा को हम धीरे धीरे शायद भूलते चले जायेंगे । और अगर भारत के नये बच्चे निर्माण न कर पाये और भारत के गुरू जीत जायं और वे ही भारत को बनायें चले जायं तो भारत का जो पुराना रोग है वह अपनी जगह रहेगा, वह कभी मिटाया नहीं जा सकता ।

पुराने आदमी की समझ चाहिए, नये आदमी की शक्ति चाहिए । पुराने आदमी का अनुभव चाहिए, नये आदमी का भविष्य चाहिए । अनुभव अतीत से आता है, भविष्य आशाओं से आता है । बूढ़े आदमी के पास आशाएं नहीं होतीं, अतीत होता है, अनुभव होता है । नये आदमी के पास आशाएं होती हैं, अनुभव नहीं होता, अतीत नहीं होता । असल में पुरानी और नयी पीढ़ी सदा उस हालत में होती है जैसी हालत में कभी एक जंगल में आग लग गयी थी और एक अंधे और एक लंगड़े ने अपने को पाया था । अंधा देख नही सकता था, लंगडा भाग नहीं सकता था । आग भयंकर थी और दोनों की मौत निश्चित थी ।

करीब करीब भारत ऐसी आग के बीच में खड़ा है, जहां एक पीढ़ी अंधी है और एक पीढ़ी लंगड़ी है । बूढ़ी पीढ़ी लंगड़ी है और नयी पीढ़ी अंधी है और आग भयंकर है और दोनों जलकर मर जायेंगे । लेकिन उन दोनों लंगड़े और अंधे आदमी ने बड़ी समझ का उपयोग किया । लंगड़ा राजी हो गया कंधे पर बैठने के लिए. अंधा राजी हो गया लंगड़े को कंधे पर बिठाने के लिए । अंधा राजी हो गया लंगड़े की आँखों से काम लेने को, लंगड़ा राजी हो गया अंधे के पैरों से काम लेने को । वे दोनों जंगल के बाहर निकल गये । क्योंकि अंधा नीचे था और चल रहा था और लंगड़ा ऊपर था और देख रहा था । दो आदमियों ने एक आदमी का काम कर लिया था । हमेशा जब भी सृजन का कोई क्षण हो किसी देश में तो पुरानी और नयी पीढ़ी इसी हालत में पड़ जाती । पुरानी पीढ़ी के पास आंख तो होती है लेकिन दौड़ने के पैर नहीं होते । नयी पीढ़ी न बैठने को राजी होगी । ये दौड़ते जवान, बूढ़ों का बोझ लेने को तैयार

होंगे, ये मरते हुए बूढ़े इन जवान की दौड़ने की गति को झेलने के लिए तैयार होंगे ?

यह सवाल है नये भारत के लिए । अभी मुझे नहीं दिखायी पड़ता है कि ऐसा हो रहा है । अभी ऐसा हो रहा है कि अंधे दौड़ रहे हैं तेजी से, तो बजाय रास्ते पर पहुंचने के वे आग में पहुंच जाते हैं और सब तरफ आग लग रही है । वह आग बहुत तरह की है, बहुत रूपों में है । इसलिए इस वक्त आग के केंद्र भारत में ही नहीं, सारी दुनिया में हैं युनिवर्सिटीज बन रही हैं क्योंकि वहां पैर स्वस्थ और आंखें नहीं हैं, ऐसे लोगों की बड़ी जमातें इकट्ठी हो गयी हैं । इस वक्त सारी दुनिया में उपद्रव और आग का केन्द्र विश्वविद्यालय है । आग सबसे जोर से वहां है और वहां आंखहीन शक्तिशाली पैर वाले युवक हैं, जो दौड़ेंगे, इसलिए नहीं कि कहीं पहुंचना है क्योंकि कहीं पहुंचने का ख्याल तो आंख को होता है, इसलिए कि पैरों में ताकत है और दौड़े बिना नहीं रहा जा सकता, दौड़ना ही पड़ेगा ।

दूसरी तरफ बूढ़े कट के पड़ गये हैं । वे चाहे मंदिरों में बैठे हों, चाहे आश्रमों में, चाहे अपने घरों में बैठे हों, कट के बैठ गये हैं । उनके पास आंख है, वे देख सकते हैं कि आगे क्या है, लेकिन पैर उनके पास नहीं है । न तो वे दौड़ सकते हैं और न वे दौड़ने वाले लोगों की सहायता लेने को तैयार है । नये भारत का जन्म हो सकता है इस आग के बाहर । बूढ़े और जवान को भारत में सेतु बनना पड़ेगा । और इधर मैं निरन्तर सोचता हूं कि हमें ऐसे कुछ शिविर और ऐसे कुछ सेमिनार और ऐसे कुछ मिलन के लिए स्थान बनाना चाहिए जहां नयी और पुरानी पीढ़ी आमने सामने बात कर सके। जहां बाप और बेटे अपनी तकलीफें और अपनी सम्भावनाएं और अपने दुख कह सकें और जहां बेटे बाप को सहानुभूति से सुन सकें, जहां बाप बेटे को सहानुभूति से सुन सके । अगर हिन्दुस्तान में ऐसा डायलाग (संवाद) पैदा नहीं होगा तो हम नये भारत का निर्माण न कर पायेंगे ।

भारत नया हो जाएगा लेकिन नये हो जाने से तो सब कुछ नहीं हो जाता । नया हो जाना दुखद भी हो सकता है, नया हो जाना गलत भी हो सकता है । नया हो जाना और बड़े खड्डे में गिर जाना भी हो सकता है । हां, कई बार सिर्फ नये हो जाने से भी राहत मिलती है । क्योंकि बदलाहट की राहत होती है । लेकिन थोड़ी ही देर बाद पता चलता है कि बीमारियां सब अपनी जगह खड़ी हैं । या और भयंकर होकर आ गई हैं । आदमी मरघट ले जाते हैं किसी अर्थी में तो रास्ते में कन्धे बदल लेते हैं । एक कन्धा दुखने लगता है तो अर्थी को दूसरे कन्धे पर रख लेते हैं । कन्धा बदलने से वजन कम नहीं होता । अर्थी में कोई फर्क नहीं होता । रास्ता वही का वही होता है

लेकिन दूसरे कन्धे पर थोड़ी देर राहत मिल जाती है। नया कन्धा होता है थोड़ी देर के लिए। भारत अर्थी तो नहीं बदलेगा सिर्फ कन्धा तो नहीं बदलेगा। सिर्फ कन्धे बदल लें और पुरानी बीमारियां नये नाम ले लें और पुरानी शराबें नयी बोतलों में भर जाय तो भी नया तो हो जाएगा, ऐसा लगेगा कि नया हो गया। लेकिन नया हो भी नहीं पायेगा कि पता चलेगा कि सब पुराना अपनी जगह खड़ा है।

नहीं, भारत को मात्र नया नहीं हो जाना है। भारत को शुभ की दिशा में, सत्य की दिशा में, शान्ति की दिशा में, शक्ति की दिशा में, आनन्द की दिशा में, जीवन की दिशा में, मुक्ति की दिशा में एक साथ एक संतुलित व्यक्तित्व को पैदा करना है जिसमें पुराने की भूल न हो, पुराने की सब समृद्धि हो। जिसमें नये की नासमझी न हो, जिसमें नये का सारा नया ज्ञान हो। एक अभूतपूर्व घटना घट गई है मनुष्य के इतिहास में बीसवीं सदी में। उसकी मैं बात करूं फिर मैं अपनी बात पूरी कर दूं. वह घटना यह घट गई है कि आज से कोई दो सौ वर्ष पहले तक दुनिया में आदमी और आदमी के ज्ञान में कभी बहुत फासला नहीं पड़ता था। असल में आदमी सदा ही अपने ज्ञान के आगे होता था और ज्ञान सदा पीछे होता था।

आज से दो सौ साल पहले तक आदमी के पीछे ज्ञान छाया की तरह था, वह आदमी के आगे नहीं होता था, सदा आदमी के पीछे होता था। क्योंकि ज्ञान का विकास अति मद्धिम था, उसकी गति बहुत धीमी थी। जीसस के मरने के साढ़े अट्ठारह सौ वर्षों में जितना ज्ञान दुनिया में पैदा हुआ उतना ज्ञान पिछले १५० वर्षों में पैदा हुआ। पिछले डेढ़ सौ वर्षों में जितना ज्ञान पैदा हुआ उतना पिछले पन्द्रह वर्षों में पैदा हुआ और जितना पिछले पन्द्रह वर्षों में ज्ञान पैदा हुआ उतना पिछले दस वर्षों में पैदा हुआ। अब हम पांच वर्ष में इतना ज्ञान पैदा करते हैं जितना पुरानी दुनिया साढ़े अट्ठारह सौ वर्षों में पैदा करती थी। साढ़े अट्ठारह सौ वर्ष में अनेकों पीढ़ियां बदल जाती हैं और ज्ञान धीरे धीरे बदलता था और आदमी ज्ञान के बदलने की चोट को भी कभी अनुभव नहीं करता था। वह इतने आहिस्ता बदलता था, आहिस्ता बदलता था कि आदमी उसमें रच-पच जाता था। उसका खून बन जाता था।

एक वैज्ञानिक प्रयोग कर रहा था। उसने एक मेंढक को उबलते हुए पानी में डाल दिया। वह मेंढक छलांग लगाकर बाहर निकल गया। क्योंकि उबलने का संघात इतना तीव्र था। फिर उसने उस मेंढक को साधारण पानी में रखा

और आहिस्ता-आहिस्ता पानी को गर्म करना शुरू किया। वह गर्म करता गया। इस गर्म करने में उसने कोई आठ घण्टे लगाये। मेंढक वहीं बैठा रहा और उबलता रहा। आठ घण्टे में वह मेंढक कण्डीशन्ड हो गया, आठ घण्टे में वह धीरे धीरे इतनी धीमी गति से गर्मी बढ़ी कि मेंढक उसके लिए राजी होता गया। मेंढक आगे बढ़ता गया, राजी होता गया। गर्मी पीछे चलती रही। मेंढक सदा आगे होता गया। छलांग उसने वहां भी लगाई लेकिन पूरे बर्तन के बाहर छलांग लगाने की जरूरत न पड़ी। पुरानी गर्मी का उसके शरीर का जो तल था उसने इंच भर आगे बढ़ के छलांग ले ली और उसने अपने शरीर की गर्मी को आगे कर लिया। वह गर्म होता रहा और मर गया। उसे पता नहीं चला। लेकिन उतने ही उबलते पानी में नये मेंढक को डालो, वह छलांग लगा कर बाहर हो जाएगा। क्यों? क्योंकि गर्मी बहुत आगे है, मेंढक बहुत पीछे पड़ गया है और मेंढक को मौका नहीं मिला कि वह गर्मी के लिए एडजस्ट हो जाय।

पुरानी दुनिया एडजेस्टेड थी। उसका ऐडजस्टमेन्ट धीमे बढ़ता था कि एक आदमी की जिन्दगी में कोई बुनियादी फर्क नहीं पड़ता था। जन्म लेते वक्त आदमी दुनिया को जहां पाता था करीब करीब वहीं मरते वक्त छोड़ता था। न रास्ते बदलते थे, न बैलगाड़ी बदलती थी, न खेती बदलती थी, न मकान बदलते थे, न दवाई बदलती थी, कुछ नहीं बदलता था। यह बदलाहट इतनी धीमी होती थी कि उस बदलाहट की कोई चोट आदमी पर नहीं पड़ती थी। पुराना इतना ज्यादा होता था, नया इतना कम होता था कि पुराना उसे आत्मसात कर जाता था, पी जाता था।

इधर पचास वर्षों म मुश्किल हो गई। ज्ञान छलांगें लगा रहा है बहुत आगे। आदमी जमीन पर रहने योग्य नहीं हो पाया और विज्ञान ने चांद पर पहुंचा दिया। आदमी अभी जमीन पर रहने योग्य बिल्कुल नहीं है। इसलिए बर्ट्रेन्ड रसल ने, जिस दिन पहली दफा आदमी ने पृथ्वी की सीमा को पार किया उस दिन जो वक्तव्य दिया था वह बहुत उचित था। बर्ट्रेन्ड रसल ने कहा कि मैं बहुत परेशानियों से घिर गया हूं, जबकि सारी दुनिया ने स्वागत किया तब बट्रैन्ड रसल ने कहा कि मैं बहुत चिन्ता से भर गया हूं। क्योंकि जिस आदमी ने अभी पृथ्वी की बेवकूफियों का अन्त नहीं किया और पृथ्वी को बेवकूफियों से भर दिया है वह अपनी बेवकूफियों को चांद पर भी ले जाने की कोशिश कर रहा है। कहीं इसकी बीमारियां सारे जगत में न फैल जायं। अभी जमीन ही इतनी नासमझी से भरी है, लेकिन ज्ञान

हमारा चांद पर पहुंचाने वाला हो गया है। हमारी सारी नासमझियां आदमी का सारा जीने का ढंग पुराना है। और ज्ञान ने छलांग ले ली। अभी इस ज्ञान ने नयी स्थितियां बना दी जिनके साथ एडजेस्ट होना पड़ेगा।

एक आदमी है अमरीका में। उस आदमी ने एक छोटा सा प्रयोग किया है जो बड़े हैरानी का है। उसने एक प्रयोग किया। वह गोरा आदमी है। सफेद चमड़ी का आदमी है। उसने प्रयोग किया कि अपने शरीर पर कलर पिगमेंट्स के इंजेक्शन्स लगवाये और अपने शरीर को नीग्रो जैसा काला करवा दिया। उस आदमी का नाम है हावर्ड ग्रीफिल्ड। यह हिम्मत का प्रयोग किया। उसने इंजेक्शन्स लगवाकर अपनी सारी चमड़ी को काला करवा दिया। बाल घुंघराले बनाने की कोशिश की लेकिन नहीं बन सके। तो उसने सिर घुटवा डाला। एक रात वह पूरी तरह नीग्रो होकर अपने कमरे से बाहर निकल गया यह अनुभव करने कि एक सफेद आदमी नीग्रो की चमड़ी में किस स्थिति से गुजरेगा। वह है तो सफेद आदमी लेकिन अमरीका में नीग्रो की क्या स्थिति है इसे सफेद आदमी कभी अनुभव नहीं कर सकता। क्योंकि वह नीग्रो की जगह कभी खड़ा नहीं हो सकता। वह नीग्रो बनकर निकल पड़ा।

उस आदमी ने अपने संस्मरण लिखे हैं, वह बड़े हैरानी के हैं। उसने लिखा है कि मैं पहले तो बहुत डरा आइने के सामने जाने से। फिर भी मैंने सोचा कि रहूंगा तो मैं वही, सिर्फ काला हो गया हूं। जब वह आइने के सामने गया और उसने बिजली का बटन दबाया तो बिजली का बटन दबाते वक्त उसके हाथ कंपे। जब उसने बिजली का बटन दबाया और आइने में देखा तो उसे पता चला कि यह मैं वही नहीं हूं। यह तो आदमी ही कोई और है। उसकी सारी आइडेन्टीटी गड़बड़ हो गई। उसका जो अपना नाम था, अपना ज्ञान था, अपनी जो समझ थी वह सब गड़बड़ हो गई। वह एकदम से जिसको कहना चाहिए **मेल ऐडजस्टमेन्ट** हो गया। सब चीजें अस्तव्यस्त हो गईं। वह अपने ही हाथ को वैसा नहीं मान सकता है कि उसका है। अब उसे शरीर अपना बिल्कुल अलग मालूम पड़ने लगा और खुद वह अलग मालूम पड़ने लगा।

है तो वह गोरा आदमी। गोरे आदमी के प्रीजूडिस और गोरे आदमी के ख्याल, और हो गया है नीग्रो। अगर इस आदमी की चमड़ी धीरे धीरे काली पड़ती जाय और सत्तर साल लग जाय तो ऐसी दिक्कत नहीं आयेगी। यह इंजेक्शन्स से बारह घण्टे के भीतर संभव हो गया। इसके दो हिस्से हो गये। यह आदमी सीजो-

फ्रेनिक हो गया। इसका एक हिस्सा नीग्रो हो गया जो बिल्कुल अलग है और एक हिस्सा गोरा रह गया जो बिल्कुल अलग है। अब इन दोनों के बीच कोई तालमेल न रहा। उसका सिर घूमने लगा। वह सड़क पर चल रहा है तो उसे पता नहीं चलता कि मैं कौन हूं। और लोग उसकी तरफ देखते हैं तो आंखें अब वही नहीं हैं जो कल तक थीं। अब लोग उसे और तरह से देख रहे हैं। अब वह एक होटल में प्रवेश कर रहा है तो लोग उसे और तरह से देख रहे हैं और उससे और तरह का व्यवहार कर रहे हैं। अब वह भीतर हँस रहा है। क्योंकि यह व्यवहार नीग्रो के साथ हो रहा है, जो वह नहीं है। वह अपनी चमड़ी को भी धोता है तो उसे ऐसा लगता है कि वह किसी और की चमड़ी धो रहा है। यह घटना इतनी तेजी से घट गई कि इसके व्यक्तित्व में खण्ड हो गये।

मनुष्य जाति ने जोर से ज्ञान उत्पन्न किया है और ज्ञान एक्सिलरेटिंग है। वह रोज गति बढ़ती जाएगी। अगले दिनों में ढाई वर्ष में उतना हो जाएगा और फिर सवा वर्ष में उतना हो जाएगा और फिर महीने भर में उतना हो जाएगा। इस सदी के पूरे होते होते आदमी अपने को बड़ी मुश्किल में पायेगा और वह यह कि वह बहुत पीछे रह गया और ज्ञान रोज बदलता जा रहा है। और उस ज्ञान के साथ नये ऐडजस्टमेन्ट खोजने कठिन हो जाएंगे। भारत के लिए जो सबसे बड़ा सवाल है वह यह है कि सारी दुनिया ने जो ज्ञान की खोज की है, और हमने तो वह खोज नहीं की, हम तो अपने घर में जी रहे थे जहां बैलगाड़ी थी, जहां क्षुद्र, जहाँ हिन्दू-मुसलमान, जहां ब्राह्मण-क्षुद्र की छाया से बच रहा था, हम अपनी उस दुनिया में जी रहे थे। अचानक आंख खुली और हमने पाया जैसे एक सपना टूट गया। न यहां बैलगाड़ियां हैं, न यहां जेट प्लेन हैं जो विक्षिप्त रफ्तार से चांद की तरफ जा रहा है। न यहां कोई ब्राह्मण है, न कोई शूद्र है, सब कुछ बदल गया है चारों तरफ।

इस बदले हुए के साथ नये भारत को अपना ऐडजस्टमेन्ट खोजना है। इस बदले हुए के साथ अपना समायोजन करना है। या तो हम पागल हो जाएंगे, सीजोफ्रेनिक हो जाएंगे और हम जीने से इन्कार कर देंगे कि हम नहीं जी सकते और या फिर हम एक छलांग लेने की तैयारी जुटायेंगे। यह तैयारी भारत के इतिहास में पहला मौका होगी, ऐसा मौका भारत को कभी नहीं आया था। यूरोप में ऐसा मौका नहीं आया जैसा हमें आया है। क्योंकि यूरोप में विज्ञान का विकास धीरे धीरे हुआ है। वहां मेंढक की गर्मी धीरे धीरे बढ़ी, वहां चमड़ी आहिस्ता बदली। यूरोप ऐडजेस्टेड हो गया। भारत के सामने जो सवाल है वह अमरीका के सामने नहीं है,

रूस के सामने नहीं है, वह यूरोप के सामने नहीं है, वह सवाल चीन के सामने भी नहीं है क्योंकि चीन कोड़े के बल पर छलांग लगवा लेगा, बंदूक के बल पर छलांग लग जायेगी। हिंदुस्तान लोकतांत्रिक देश है, छलांग बन्दूक के कुंदे पर नहीं लगवायी जा सकती और इतिहास की प्रतिक्रिया में हम ऐसी जगह खड़े हो गये हैं जहां हम छलाँग लगानी पड़गी, अन्यथा हम पागल हो जायेंगे।

नया भारत अपनी पुरानी सारी शक्ति को बटोर कर एक बार अगर छलांग लगाने की तैयारी दिखाये, इस छलांग की तैयारी में जवान के पैरों की जरूरत होगी, बूढ़े की समझ की जरूरत होगी। अगर हम सारी ताकत इकट्ठी करके लगा सकें, लेकिन लगता है कि यह नहीं हो पायेगा क्योंकि मुल्क में सारी ताकतें तोड़ने वाली हैं। कोई महाराष्ट्रीयन को गुजराती से तोड़ता है, कोई हिंदी बोलने वाले को गैर हिंदी से तोड़ता है, कोई हिंदू को मुसलमान से तोड़ता है, कोई गरीब को अमीर से तोड़ता है, कोई दक्षिण को उत्तर से तोड़ता है, कोई बाप को बेटे से तोड़ रहा है, कोई शिक्षक को शिष्य से तोड़ रहा है। सारा मुल्क खंड-खंड है। हम इकट्ठी ताकत कैसे लगा पायेंगे? अगर हम यह नहीं लगा पायें तो भारत नया होगा, इसकी संभावना कम है। भारत विक्षिप्त हो जायेगा इसकी संभावना ज्यादा है। भारत पूरा का पूरा पागल हो इसकी संभावना ज्यादा है।

ये विकल्प हमें सीधे देख लेने चाहिए कि एक रास्ता तो यह है कि हम पागल हो जायं, जिसमें हमारे राजनीतिक बड़े कुशल हैं। वे हमें पागल करवा सकते हैं। दूसरा रास्ता यह है कि जहां हम बहुत बुद्धिमत्तापूर्वक भारत की सारी शक्तियों को इकट्ठी करें। भारत में न तो गरीब और अमीर के बीच कोई संघर्ष चाहिए अभी पचास वर्ष, न भारत को विद्यार्थी शिक्षक के बीच कोई संघर्ष चाहिए, न भारत में स्त्री पुरुष के बीच कोई संघर्ष चाहिए, न भारत में हिंदी बोलने और गैर हिंदी बोलने वाले के बीच संघर्ष चाहिए। भारत को पचास वर्षों तक कोई संघर्ष नहीं चाहिए, टोटल को-ऑपरेशन, पूर्ण सहयोग चाहिए तो शायद हम नये भारत को जन्म देने में समर्थ हो सकते हैं। अगर यह नहीं हुआ तो मैं समझता हूं कि जो होगा वह पुराने भारत से भी बदतर होने वाला है। वह विक्षिप्त भारत होगा, वह पागल भारत होगा। आदमियों के पागल होने के संबंध में हमने सुना है लेकिन आदमियों के पागल होने की जो स्थिति होती है वह पूरे राष्ट्र के लिए हमारे लिए खड़ी हो गयी है। पूरा मुल्क पागल हो सकता है।

ये थोड़ी सी बातें मैंने कहीं इस आशा में कि आप सोचेंगे। मैं कोई मार्गदर्शक

नहीं हूं । इससे मुझे जो सीधी साफ बात है, कह देने में सुविधा हो जाती है । आप मेरी बात मानें ऐसा आग्रह नहीं है । आप सिर्फ सोचें । असल में भारत बहुत जल्दी मान लेता है किसी की भी बात । यह खतरा हो गया । कम्युनिस्ट कहेंगे, उनकी मान लेगा, जनसंघी कहेंगे उनकी मान लेगा, साधु कहेंगे, उनकी मान लेगा । हजार तरह के माननेवाले मुल्क में इकट्ठे हो जायं तो सारा मुल्क टूट जाता है । मानना बंद करें ।

अगर मुल्क की टूट बंद करनी है तो किसी को भी मानना बन्द करें । सोचना शुरू करें । सोचना एकमात्र एकता है । अगर पूरा मुल्क सोचने लगे तो सोचने के नियम अलग अलग नहीं होते । अगर आप भी जोड़ें दो और दो कितने हैं तो चार होंगे और मैं भी जोड़ूं तो चार होंगे और तीसरा भी जोड़े तो चार होंगे । अगर हम सोचते हैं तो दो और दो चार होंगे । लेकिन मैं मानता हूं कि कुरान में लिखा है कि दो और दो पांच होते हैं, मैं कुरान को मानता हूं । आप गीता को मानते हैं, उसमें लिखा है कि दो और दो तीन होते हैं, आपके तीन होंगे । कोई मार्क्स को मानता है, उसकी किताब में लिखा है दो और दो, दो ही होते हैं तो वह दो ही होंगे । मानने वाले लोग मुल्क को तोड़ रहे हैं, तोड़े हुए हैं । मुल्क को विचार करने वाले लोग चाहिए । विचार के निष्कर्ष सदा एक हैं । विचार युनिवर्सल है । तो मेरी बात आप सोचेंगे, मानेंगे नहीं, अन्यथा मैं भी एक टुकड़े को तोड़नेवाला सिद्ध हो जाऊंगा । सोचें, विचार हमें एक जगह ले आयेगा जहां हम छलांग लगाने की तैयारी में हो सकते हैं ।

ओ चित्तेरे ! ये क्या ?

"मेरी आंखों के केनवास पर
वर्णमाला रहित भाषा में
ओ चितेरे !
ये क्या लिख दिया ?
परिचय-विहीन
रंगों की झिलमिलाहट में
संस्कारों की —— ——— ————————
सभी बहारें
कुम्हला गईं ।
अनबोई अनुभूतियाँ
खिल गईं
सहसा
दिव्यालोक से ।"

— श्री देवेन्द्रकुमार जैन

पन्ना

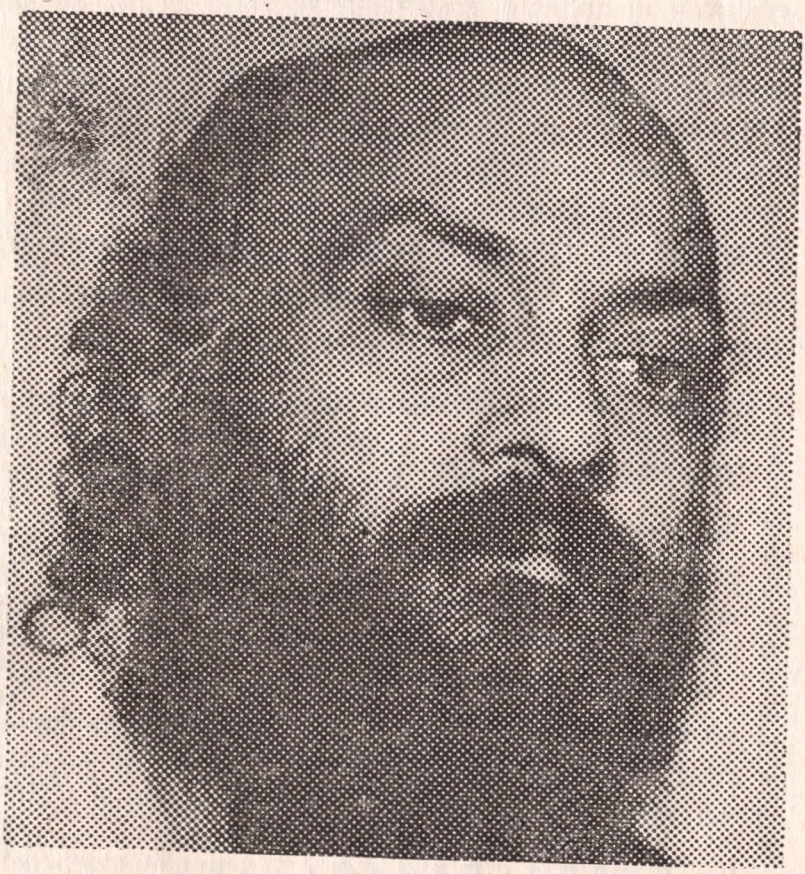

प्रभु के साथ प्रश्नोत्तर

संकलन : श्री. नंदकिशोर (बड़ौदा)

(दिनांक ३१-७-७०, महात्मागांधी नगर गृह, बड़ौदा में भगवान श्री की प्रश्नोत्तर भेंट वार्ता।)

प्रश्न-१ :

आप जिस प्रेम की बात कर रहे हैं उसके बाद ही विवाह और परिवार निर्मित हो वह शुद्ध प्रेम है या अशुद्ध ?

उत्तर : इस हमारे अभागे देश में कोई भी चीज शुद्ध और अशुद्ध हुए बिना नहीं रहती। हम उसे शुद्ध और अशुद्ध में बांटेंगे ही। चाहे दूध हो, चाहे घी हो, चाहे प्रेम हो। असल में बांटने के ख्याल के बिना हम विचार नहीं कर सकते। अशुद्ध प्रेम जैसी कोई चीज होती ही नहीं। **प्रेम होता है तो शुद्ध होता ही है या नहीं होता तो नहीं ही होता है।** प्रेम अशुद्ध कैसे हो सकता है। **और प्रेम भी अशुद्ध, अपवित्र होता है तो इस जगत में कोई भी चीज पवित्र नहीं हो सकती।** लेकिन जिन मित्र नें पूछा उनका कोई प्रयोजन है। वे कह रहे हैं कि अगर शारीरिक प्रेम ही है तो वह अशुद्ध है। लेकिन शरीर का क्या कसूर है कि उसका प्रेम अशुद्ध हो। इतना ही कहिये कि वह प्रेम सतही है "सुपरफिस्यल" है, अशुद्ध नहीं है। इतना ही कहिये बहुत ऊपरी है। इतना ही कहिये कि शरीर से ज्यादा उसकी गहराई नहीं है। लेकिन उसे अशुद्ध मत कहिये। चूंकी पहली तो बात यह है कि शरीर अशुद्ध नहीं है, शरीर अपवित्र नहीं है। 'अनहोली" नहीं है, शरीर की अपनी पवित्रता है। **शरीर का अपना दिव्य स्वरूप है।** शरीर के जीवन से परमात्मा का अपना संबंध है। **शरीर अपवित्र है यह किसी ने किसी दुर्भाग्य के क्षण में हमें सिखाया।** शरीर अपवित्र है तो ध्यान रहे उसमें पवित्र आत्मा का वास नहीं हो सकता। अगर ऐसे अपवित्र मकान में परमात्मा रहेगा तो परमात्मा के मन में भी अशुद्धि को चुनने का कोई भाव जरूर चाहिए।

शरीर की अपनी पवित्रता है, शरीर के प्रेम की अपनी पवित्रता है। माना कि वह प्रेम बहुत ऊपरी है। ऊपरी भला हो लेकिन उसकी अपनी सच्चाई है। उसका भी अपना सत्य है। और प्रेमशून्य व्यक्ति से

शरीर को प्रेम करनेवाला व्यक्ति अच्छा है। ये शुद्ध और अशुद्ध प्रेम के विभाजन करनेवाले लोग यह भूल ही जाते हैं कि इस विभाजन में कहीं ऐसा ही न हो कि प्रेम करना असंभव हो जाये। अगर किसी व्यक्ति को भूख लगी हो और हम खाना दें तो कोई कह सकता है कि क्या अशुद्ध खाना देते हो जो शरीर तक जाकर खत्म हो जाता है। ऐसा खाना दो जो आत्मा तक जाये। कोई ऐसा खाना नहीं है कि आत्मा तक जाये तो दूसरा उपाय यही है कि आदमी को भूखा मरने दो, शरीर तक खाना देना ठीक नहीं।

जैसे शरीर तक पहुंचने वाला खाना है, वैसे ही शरीर तक पहुंचने वाला प्रेम भी है उसकी अपनी पवित्रता है। उसकी गहरी पवित्रतायें है। **ध्यान रहे मैं प्रेम को पवित्र, अपवित्र में नहीं बांटता बल्कि पवित्र, और पवित्र, और पवित्र में बांटता हूं।** मैं सारे जीवन को इस भाषा में लेता हूं कि बजाय उसको हम विरोधाभास में बांटें, उचित है कि एक ही चीज को मात्राओं में बांटें।

गर्मी और ठंडक में कोई विरोध नहीं है। लगता है भाषा म विरोधी चीजें है लेकिन. एक हाथ को स्टोव पर गरम कर लें और एक हाथ को बर्फ पर ठंडा कर लें फिर दोनों हाथों को एक ही बाल्टी में डाल दें तो कहना मुश्किल हो जाएगा कि पानी ठंडा है या गरम है क्योंकि आपका एक हाथ खबर देगा कि गरम है और एक हाथ खबर देगा ठंडा है। तब आपको पता चलेगा कि ठंडी और गरमी दो चीजें नहीं है, एक ही चीज की दो मात्राएं है। मात्रायें सब सापेक्ष है –रिलेटिव हैं। कोई प्रेम न तो अशुद्ध है और कोई प्रेम न तो शुद्ध है, विपरीत अर्थ में। सभी प्रेम शुद्ध हैं। प्रेम शुद्धता है, प्रेम पवित्रता है। इसलिए बिलकुल शरीर को किया गया प्रेम भी अपनी पवित्रता रखता है। या तो बहुत सतेज है और मैं मानता हूं कि हम शरीर को किये गए प्रेम को भी पवित्र मानें तो भीतर गति हो सकती है। और हम शरीर के प्रेम को अशुद्ध मानें तो भीतर जाने का द्वार भी खो जाता है। **जब हम व्यक्ति से मिलते हैं तो सबसे पहले उसके शरीर से ही मिलते हैं। सबसे पहले उसकी आत्मा को मिलने का कोई उपाय नहीं है। द्वार है शरीर उसकी आत्मा का।**

लेकिन यह जरूरी है कि उसकी आत्मा को मिलना हो तो उसके

शरीर को मिलें। शरीर पर प्रेमी रुक सकता है, कोई आदमी द्वार पर भी रुक सकता है। कोई आदमी भीतर न जाये तब भी मैं कहूंगा कि वह आदमी उससे बहेतर है कि जो द्वार तक भी नहीं आया लेकिन जो द्वार पर रुक गया है उसको अशुद्ध न कहूंगा, सिर्फ ठहरा हुआ कहूंगा, अवरुद्ध कहूंगा। **जो प्रेम शरीर तक गया है वह अपवित्र नहीं है। पवित्रता की तरफ बढ़ाया गया एक कदम है।** जो ठहर गया है, आगे और उठना चाहिए। **शरीर से ही प्रेम शुरू होता है आत्मा तक पहुंचना चाहिए। परमात्मा तक उसकी परमनिष्पत्ति होनी चाहिए।** मेरे लिए ये सब सीढ़ियां हैं। इनमें कोई विरोध नहीं है। और जिन लोगों ने इनके बीच विरोध खड़ा किया है और ऐसी दुश्मनी खड़ी की है कि एक को शुद्ध और एक को अशुद्ध कहते हैं उन लोगों ने मनुष्य को बहुत ही परेशानी में डाल दिया है। और आदमी जिससे शुरू करेगा जिसको कि वे अशुद्ध कहते हैं, उससे ही शुरू करेगा। तब उसका एक ही मतलब है कि वह शुरू ही न करे। इसलिए हमारे जैसे मुल्क ने प्रेम ही छोड़ दिया। उससे ही डर पैदा हो गया कि कहीं अशुद्ध प्रेम पैदा न हो जाए। जब प्रेम छूट जाता है तो सिर्फ सेक्स रह जाता है।

ध्यान रहे जो स्त्री और पुरुष के बीच सम्बन्ध हैं वे सिर्फ सौदे के रह जाते हैं। सेक्स शारीरिक भी नहीं रह जाता सेक्स शरीर से भी नीचे उतर जाता है वह सिर्फ "बायोलाजीकल" रह जाता है। उसमें व्यक्ति का कोई हाथ नहीं रह जाता। उसमें आदमी को बहुत पीछे की अंधी प्राकृतिक शक्तियां काम करने लगती है। चूंकि प्रकृति चाहती है कि आप बिना बच्चा पैदा किये न मर जायें। इसलिए आपको भारी धक्का देती है बच्चा पैदा करने के लिए, और उस दौड़ में आप बहते रहते हैं।

मनुष्य का व्यक्तित्व प्रेम से शुरू होता है। कोई पशु शायद प्रेम नहीं करता, कोई पौधा शायद प्रेम नहीं करता। पर पशु और पौधा तो सेक्स ही में जीते हैं। उनकी जिन्दगी में भी यौन तो है। प्रेम नहीं है। ऐसे मनुष्य भी हैं जिनकी जिन्दगी में प्रेम नहीं है सिर्फ यौन है। इस तरह **दो प्रकार के मनुष्य हैं। एक तो वे जिसका किसी दूसरे व्यक्ति से संबंध होता है वह यौन के क्षण से ज्यादा नहीं होता जो संबंध होता है वह यौन की तृप्ति से पूरा हो जाता है। ऐसे लोग यौन केन्द्रित है। और**

दूसरा वर्ग है जो जिन्दगी भर यौन से ही लड़ते रहते हैं लड़ते रहते हैं, जैसे कोई अपना बांया हाथ अपने ही दायें हाथ से लड़ाता हो। वो अपने भीतर ही लड़ते हैं। वे भी यौन केन्द्रित हैं।

प्रेम से यौन का रूपांतरण शुरू होता है। शारीरिक प्रेम से भी शरीर के प्रति हमारा जो लगाव है वह यौन के आकर्षण से ऊपर उठता है, और प्रेम की दिशा में यात्रा शुरू होती है। मैं आप से कहूंगा अगर आपने शरीर के प्रेम को अशुद्ध माना तो इसका एक ही परिणाम होने वाला है। आप में प्रेम तो कभी पैदा ही नहीं होगा, क्योंकि दरवाजा इंकार कर दिया गया। और प्रेम जब पैदा ही नहीं होगा – तो भी आपकी जिन्दगी में सेक्स और यौन तो रह ही जायेगा। एक उपाय है या तो यौन की यांत्रिकता में भागे चले जायें यंत्रवत् उसमें आपका व्यक्तित्व नहीं है, या फिर यंत्रवत् उसको दबाये चले जायें। दोनों ही स्थितियां उष्ण हैं और मनुष्य के तन से नीचे की हैं।

मनुष्य के जीवन का विकास प्रेम से शुरू होता है। इसलिए मैं कहता हूं कि शरीर के प्रेम की अपनी पवित्रता समझ लेना जरूरी है। कोई व्यक्ति किसी के शरीर को भी प्रेम करता हो तो उसे निन्दा के भाव से अपने आप को देखने का कोई कारण नहीं है। वह कह सकता है इतना ही प्रेम है शायद आगे बह सके। लेकिन इस संबंध में भी स्पष्ट होना चाहिए। अगर हमें किसी के शरीर से प्रेम है तो भूल से भी उससे आत्मा से प्रेम की बात नहीं करना चाहिए। साफ ईमानदार आदमी आगे भी बह सकता है। बेईमान आदमी मुश्किल में पड़ जाता है। हम करते हैं किसी के शरीर को प्रेम लेकिन बातें तो उसकी आत्मा की करते हैं। तब बड़ी भ्रान्ति पैदा होती है। उचित है कि व्यक्ति अपने मन के समस्त भावों को जागृत होकर देखे, और जितने दूर तक सच हो उतने दूर तक स्वीकार करे। जिसके आगे सच न हो उसके आगे कह दे कि मुझे कुछ पता नहीं है अभी, अभी मैं आत्मा को पहाचान नहीं पाया।

उन मित्र ने तो कहा है कि सच्चा प्रेम तो बहुत कम दिखाई पड़ता है। क्योंकि सच्चे आदमी भी बहुत कम दिखाई पड़ते हैं। उसमें कसूर प्रेम का नहीं है उसमें कसूर सच्चे आदमी की कमी का है। और सच्चा प्रेम जानने या देखने जाने की जरूरत नहीं है, क्योंकि दूसरे में आप कैसे पता

लगायेंगे कि प्रेम सच्चा है या झूठा। दूसरों के दरवाजों के छेदों म से झांकने की कोई जरूरत नहीं है। ये "पीपींग टोम्स" से बहुत तकलीफ हो गई है। जो दूसरों की खिड़कियों के छेदों में से झांकते रहते हैं, अपने भीतर देखें कि मेरी जिन्दगी में प्रेम जैसी कोई चीज है या नहीं, और इससे क्या फर्क पड़ता है कि दुनिया में न हो ! अगर मेरे भीतर हो तो बात खत्म हो गई। सबसे बड़ा प्रश्न तो यह है कि मेरी जिन्दगी में प्रेम का अंकुरण हुआ है या नहीं।

प्रश्न–२ : प्रेमपूर्ण जीवन से क्या आनन्दपूर्ण जीवन का कोई सम्बन्ध है ?

उत्तर : निश्चित ही है। संबंध है और गहरा संबंध है। असल में प्रेमहीन जीवन आनन्दमय हो ही नहीं सकता। प्रेममय जीवन ही आनंद होगा क्योंकि प्रेम में ही मनुष्य की आत्मा पूरी की पूरी खिलती है। **जब हम किसी से प्रेम करते हैं तो उसके पास होने का जो आनन्द है वह कौन सा आनंद है ? उसके पास होने का एक आनन्द है कि उसके पास हम अपने पूरे रूप में प्रकट होते हैं।**

एक बच्चा अपनी मां के पास पूरी तरह प्रगट होता है, नग्न, जैसा है वैसा प्रगट होता है। एक प्रेमी अपनी प्रेयसी के पास "सहज", "एट इज" हो सकता है, "रीलेक्स्ड" हो सकता है। उसे चेहरा बनाने की या अभिनय करने की कोई जरूरत नहीं है। और प्रेमी के प्रति भी अभिनय करना पड़ता हो तो जानना कि प्रेम हमारे जीवन में पैदा नहीं हुआ। अगर प्रेमी के पास भी हमें तनावग्रस्त होना पड़ता है और ख्याल रखना होता है कि क्या बोलूं और क्या न बोलूं, क्या व्यवहार करूं और क्या व्यवहार न करूं और सभ्यता, अनुशासन, शिष्टाचार, कर्तव्य हमारे प्रेम के बीच आते हों तो समझना कि यह सौदे का संबंध है, प्रेम का संबंध नहीं है।

प्रेम का संबंध ऐसा है कि किसी के पास हम ऐसे हो पायें जैसे कि हम अकेले में होते हैं। **प्रेम ऐसी एक स्थिति है कि दो व्यक्ति ऐसे हो कि दूसरा मौजूद न हो और एक ही रह जाए।** असल में दूसरे की मौजूदगी बड़ी तनावपूर्ण है, उससे चिन्ता शुरू हो जाती है, तत्काल। एक सुनसान रास्ते पर आप अकेले जा रहे है तब आप और ही आदमी होते हैं। अचानक दो आदमी कहीं से निकले आये तब आप वही आदमी नहीं रह जाते। उनकी मौजूदगी तत्काल आपको बदल देती है। आप सख्त खड़े

तत्काल हमले के लिए तैयार या बचाव के लिए तैयार हो जाते हैं। अगर दूसरे की मौजूदगी आपको भयभीत नहीं करती और आप हमले या बचाव के लिए तैयार नहीं होते तो समझना कि वह व्यक्ति और आपके बीच प्रेम की घटना घटी है। **प्रेम का मतलब यह है कि हम दूसरे के पास गैर-सुरक्षा की हालत में हो सकते हैं।**

मैंने सुना है कि एक युवक विवाह करके अपनी प्रेयसी को लेकर दूर देश को यात्रा पर निकला था। समुद्र में तूफान आया और जहाज डगमगाने लगा जैसे अब डूबा अब डूबा। लेकिन वह युवक हंसता रहा। उसकी प्रेयसी ने कहा तुम घबड़ा नहीं रहे हो? भयभीत नहीं हो? सारे लोग घबड़ा रहे हैं और प्रार्थना करके चिल्ला रहे हैं, ये दान करेंगे, मंदिर बनवा देंगे, धर्मशाला बनवा देंगे और और तुम चुप बैठे हो, घबड़ा नहीं रहे हो, मरने के करीब हो! पुरानी कहानी है, उस युवक ने म्यान से तलवार निकाली और अपनी प्रेयसी के गले पर नंगी तलवार रख दी। लेकिन वह हंसती रही। युवक ने पूछा तुम घबड़ा नहीं रही हो तो वह बोली तलवार तुम्हारे हाथ में है तो मुझे भय का क्या कारण? तो उस युवक ने कहा कि परमात्मा के हाथ में तलवार है तो मुझे भी भय का क्या कारण। **जहां भी प्रेम है वहां भय नहीं है।** प्रेम का फूल जब खिलता है तो अभय का फूल भी साथ में खिलता है। **और जब प्रेम हमारे भीतर के जीवन को पूरी खिलावट देता है, "फूलावरिंग" देता है तभी आनन्द की घटना घटती है।**

खिले हुए फूल को देखा है? हवाओं में, सूरज की रोशनी में, आकाश में उस नाचते हुए फूल को गौर से देखना। उसके नाच का राज़ क्या है? राज़ यह है वह पूरा खिल गया है। **मनुष्य का आनन्द भी उस दिन प्रकट होता है जिस दिन उसे खिलने का मौका मिल जाय।** वे मौके बहुत तल पर मिल जाते हैं।

अगर हम एक साधारण मनुष्य से भी प्रेम करने में समर्थ हो जाएं तो उसके पास हमारे प्राण फूल, खिलने मे समर्थ हो जायें। निश्चित ही एक व्यक्ति के पास प्राणोंका पूरा फूल नहीं खिलता। क्योंकि व्यक्ति की सीमाएँ हैं, हमारी सीमाएं हैं। ये प्राणों का फूल तो सिर्फ परमात्मा के प्रेम में ही पूरा खिल पाएगा। फिर कोई सीमा नहीं,

असीम तक खिल पाएगा। इन दोनों खिलावटों को मैं दुश्मन की तरह नहीं देखता। इन दोनों खिलावटों में जो अंतर है वह मात्रा का अंतर है और **जो व्यक्ति किसी व्यक्ति से प्रेम की स्थिति नहीं जानता वह परमात्मा से प्रेम करने की स्थिति नहीं जान पाएगा।** जिसन बूंद भी नहीं देखी वह सागर की तलाश में निकलेगा उसकी आशा कम होगी। प्रेम की बूंद दो व्यक्तियों के बीच घटित होती है। और दो व्यक्ति के बीच प्रेम की बूंद घटित हो जाए तो पहली दफा प्यास पैदा होती है, सागर के लिए।

असल में प्रेम से ही प्रार्थना का जन्म हुआ है और प्रेम से ही परमात्मा की अभीप्सा पैदा हुई है। प्रेम स्वाभाविक है। वह मनुष्य की सहज घटना है। **किसी ने जब व्यक्तियों के साथ अनंत के साथ अपने प्रेम को जोड़ा है तो प्रेम ही विकसित होकर पूर्ण होकर प्रार्थना बन जाता है।** मैं तो कहता हूं कि प्रेम ही प्रार्थना है और प्रेम ही अपनी पूर्णता में परमात्मा हो जाता है। लेकिन मैं किसी प्रेम को अशुद्ध कहने को तैयार नहीं हूं। एक ही अशुद्धि है जीवन में कि प्रेम न हो। **जीवन में प्रेम का अभाव ही अशुद्धि है। प्रेम का भाव तो सदा ही शुद्ध है।** वह कितना ही छोटा हो, कितना ही सीमित हो, कितना ही अवरुद्ध हो लेकिन प्रेम की जरासी किरण भी उस महासूरज की ही खबर है। छोटी-सी किरण जो आपके घर की छत में से आपके अंधेरे कमरे में आ गई है। उस छोटी-सी किरण से उस महासूरज का माप क्या निकल सकेगा? उस छोटी-सी किरण को देखकर क्या सूरज का चित्र बना सकेंगे? लेकिन फिर भी वह छोटी-सी किरण जो आपकी छत को तोड़कर आपके घर में प्रवेश कर गई है वह महासूरज का ही हिस्सा है। और कोई आदमी उस किरण के पथ पर यात्रा कर जाए तो एक न एक दिन वह महासूरज तक पहुंच जाएगा।

कभी ख्याल किया है आपने, सूरज की किरणें अगर गंदे पानी में भी पड़ जाएं तो गंदी नहीं होतीं, वे तो उतनी ही स्वच्छ होती हैं। किरण को न तो गन्दा पानी छू पाता है और न तो पानी की गंदगी छू पाती है। किसी भी तल पर प्रेम की किरण हो तो वह पवित्र ही है।

असल में प्रेम ही पवित्रता है– **"लव इज होलीनेस"** । इसलिए जहां प्रेम है वहां मैं कोई अशुद्ध प्रेम की बात नहीं सोच पाता । कोई अगर अशुद्ध देखता हो तो कहना उचित है कि प्रेम नहीं है । अगर प्रेम जरा-सा दिखता हो, एक इंच भी चला हुआ तो समझना कि शुद्ध है । **क्योंकि परमात्मा के रास्ते पर एक कदम इतना ही शुद्ध है जितने हजार कदम शुद्ध हैं** । अगर एक कदम अशुद्ध हो तो शेष सारे कदम कैसे उठाये जाएंगे ?

★

कुछ शेर सुनाता हूं मैं

१ २

अफ़साना[1]–ए–लयला मजनूं तो ख़ाक है उसके मुकाबिल ।
गम–ए कबीर को देखो रजनीश मिले फिर भी न मिले ।।

०००

उस बुलंदी[3] से भी खुदा को अंदाज–ए हाल है मेरा ।
अश्क़ बहने को ही थे कि दिल सम्भाला है मेरा ।।

००

बता किसे फिक्र है ऐ "कबीर" कि कहां मिलना है ।
जाना है वहां, जहां मिले ही है, फिर कहां मिलना है ।।

०००

१– कहानी २– तुलना में ३– श्रेष्ठता ४– आंसू

०००

—स्वामी कृष्ण कबीर

कीर्तन

बुद्धि और भाव के बीच का स्वर्ण–सेतु

—संकलन : मा योग क्रांति

प्रश्नकर्ता : आजकल हर प्रवचन के पीछे आप कीर्तन पर क्यों जोर देते हैं ? कीर्तन के संबंध में थोड़ा-सा समझाइये ।

कीर्तन के संबंध में समझाना थोड़ा मुश्किल है, क्योंकि जो समझ के परे है उसी को कीर्तन कहते हैं । और जोर इसलिए देता हूं कि डेढ़ घंटे मेरा प्रवचन सुनकर आपकी समझ बहुत थक गई होगी, अतः अब नासमझी का थोड़ा काम पीछे कर लें । जो मैं बोल रहा हूँ, वह तो आपकी बुद्धि पर आघात करता है । अगर आप इस तरह सुन रहे हैं कि बुद्धि को हटा दिया है तो मेरी बात आपके हृदय तक चली जाएगी । लेकिन ऐसा सुनना कठिन है । बुद्धि बीच में खड़ी रहती है, द्वार पर खड़ी रहती है । भीतर जाने देने के पहले वह जाँच-परख करती है कि अपने मत की बात है ? अपने शास्त्र की बात है ? अपने वेद में कही है कि नहीं कही है, तो भीतर जाने दें ।

वैज्ञानिक कहते हैं कि आपकी इन्द्रियां और आपकी बुद्धि (जैसा हम आमतौर से सोचते हैं) बाहर की संवेदनाओं को भीतर ले जाने के उपाय हैं। यह थोड़ी ही दूर तक सच है। केवल दो प्रतिशत चीजों को भीतर जाने दिया जाता है, अंट्ठानबे प्रतिशत चीजों को बाहर रोक लिया जाता है। यह जरूरी भी है। आप रास्ते से गुजर रहे हैं और अगर सौ प्रतिशत जो घट रहा है रास्ते पर, वह आपके भीतर चला जाए, तो आप घर न पहुंच सकेंगे। आप घर पहुंच जाते हैं इसलिए कि आपका मस्तिष्क पूरे समय चुनाव् कर रहा है : किसको भीतर जाने देना किसको बाहर रोक देना। मगर सभी चीजें जो घट रही हैं, आपके मस्तिष्क में घुस जाएं, तो आप घर न पहुंच पायेंगे या किसी दूसरे के घर पहुंच जाएंगे। या अपने ही घर पहुँच जायें तो पहचान न पायेंगे की आपका घर है ? तब आप पागल हो जायेंगे। इस वजह से बुद्धि पूरे वक्त सुरक्षा करती है कि बिल्कुल जांच-पड़ताल करके भीतर किसी चीज को प्रवेश करने दें।

आप सभी चीजें नहीं सुनते। सभी आवाजें नहीं सुनते आप। और आप के भीतर क्षमता है इस बात की आप जो सुनना चाहें सुनें, जो न सुनना चाहें न सुनें। कान पर आवाज पड़ जाए, तो भी आपकी बुद्धि चूक सकती है। उसको लगे नहीं सुनना है, तो कान सुन लेगा, लेकिन बुद्धि अपना संबंध भीतर तोड़ लेगी।

अभी साल्टर नाम का एक वैज्ञानिक एक छोटी-सी बिल्ली पर प्रयोग कर रहा था। बिल्ली के कान के पास जोर से आवाज की जाती। आवाज होते ही बिल्ली चौंक जाती, क्योंकि आवाज बहुत तेज होती थी। उसके कान में आवाज जाने पर उसका ग्राफ यंत्र पर बन जाता, जो बताता कि बिल्ली के कान पर बहुत जोर का आघात हुआ और बिल्ली का पूरा मस्तिष्क का तंत्र झनझना गया। तब अचानक दूसरे कोने से एक चूहे को प्रवेश दिया जाता है। बिल्ली चूहे को देखती है। और उसकी सारी आत्मा उसकी आंखों से चहे को देखने लगती हैं। फिर आवाज की जाती है, लेकिन बिल्ली को सुनायी नहीं पड़ता। वह ग्राफ भी नहीं बनता, जो पहले बना था। आवाज अब भी हो रही है, कान पर चोट अब भी पड़ रही है, लेकिन वह जो ग्राफ बनता था (कि उसका मस्तिष्क का तंत्र झनझना गया), वह बिलकुल नहीं बनता। क्या हो गया ? बिल्ली ने अपनी बुद्धि और काम का संबंध तोड़ दिया। बुद्धि चहे की तरफ दौड़ गई। हम पूरे वक्त सक्षम हैं भीतर अपने संबंध तोड़ने और जोड़ने में। क्योंकि यह बचाव की शर्त है आदमी की, इसलिए बुद्धि की आदत हो गई है, बहुत चुन-चुन कर भीतर जाने देने की। जब आप मुझे सुन रहे हैं, तब भी

बुद्धि उस आदत का उपयोग करती है। जो उस आदत को छोड़कर सुनता है, उसको ही हमने शिष्य कहा है। शिष्य सीखने के लिए इतना तैयार होता है कि बुद्धि के सब 'डिफेन्स मेजर्स', सुरक्षा के उपाय अलग कर देता है, द्वार खुला छोड़ देता है। **यही श्रद्धा का अर्थ है।**

श्रद्धा का अर्थ है : **जिस तरफ श्रद्धा है, उस तरफ हम अपनी सुरक्षा के सब उपाय छोड़ देते हैं।** तब आपके हृदय तक बात पहुंच जाएगी, तब आपके हृदय के तंतु भी झनझना जायेंगे। तब आपको कठिनाई नहीं होगी कि कीर्तन क्या है। आप बुद भी करना चाहेंगे। तब मैं जो बोल रहा हूँ, वह आपकी बुद्धि का भोजन नहीं बनेगा, आपके **हृदय का रस हो जएगा।** और वह रस प्रकट होना चाहेगा। और वह रस मग्न होना चाहेगा, डूबना चाहेगा। तो जो हृदय से सुन रहे हैं उनके तो पैर थिरकने लगेंगे, उनका तो सिर डोलने लगेगा, उनके तो हाथों में कोई नाचने लगेगा। चाहे वे सम्हल कर अपनी कुर्सी पर बैठे रहें भला—पास-पड़ोस के डर से। लेकिन कोई उनके भीतर नाचने की तैयारी करने लगेगा। और जो कहा है, अगर वह हृदय को छू जाए, तो जरूर ही आप नाचने लगेंगे। **क्योंकि हृदय नाचना ही जानता है।** हृदय पर जब कोई आघात गहरा हो जाता है, और हृदय में जब कोई बीज गहरे में उतर जाता है, तो हृदय एक ही तरह से अपने को प्रकट करना जानता है कि सारा रोआं-रोआं नाच उठे। तो जिनके हृदय तक बात पहुंचती है, वे नाचना चाहते हैं। और उन्हें बिना नाचे सड़क पर छोड़ देना खतरे से खाली नहीं है। दस मिनट नाचकर वे हल्के हो सकेंगे। **वह जो भीतर घना हुआ है, वह प्रगट हो जायगा।**

जो बादल आकाश में आया, वह बरस जाएगा। वे हल्के होकर जायेंगे और एक संबंध भी जोड़ कर जायेंगे कि **बुद्धि और हृदय में विरोध नहीं है,** विरोध हमारा खड़ा किया हुआ है। लेकिन जिनकी समझ मे नहीं आया, जिनकी समझ द्वार पर पहरा बनकर खड़ी हो गई और जिन्होंने इन बातों को हृदय तक नहीं पहुंचने दिया, उनको जरूर सवाल उठेगा कि कीर्तन की क्या जरूरत हैं। न केवल सवाल उठेगा, बल्कि ऐसा भी लगेगा कि यह तो बड़ा विपरीत है।

जो मैं कहता हूं, उससे यह कीर्तन विपरीत मालूम पड़ता है। यह तो बड़ी नासमझों जैसी बात लगती है, यह ग्रामीण लगता है कि लोग नाचें, कूदें। ध्यान रखें मेरे लिए सभी विपरीत (जैसा लाओत्से ने कहा है) परिपूरक है। जब मैं एक, डेढ़ घंटे तक आपसे बुद्धि की बात करता हूं तो आपका बैलेंस (संतुलन) झुक जाता

है एक तरफ। जरूरी है कि उससे विपरीत हम यहां कुछ करके विदा हों। आप ज्यादा बैलेंस, ज्यादा संतुलित होकर जायेंगे। यदि कुछ हृदय का काम कर लें।

और भी कारण हैं। **जो मैंने कहा है, वह आपमें गहरे उतर जायेगा, अगर आप उसको सुनकर नाच कर लौटें।।** जो मैंने कहा है, अगर आप उस पर सोचते हुए लौटेंगे, तो आप उसे खराब कर देंगे। मैंने जो कहा है वह आपके सिर के ऊपर हावी है। आप उसको सोचते हुए लौटेंगे, तो आप करेंगे क्या ? आप सोच कर उसको विकृत कर देंगे। तो उचित है कि दस-पन्द्रह मिनट एक खाली गैप, एक अंतराल मिल जाए और आपको मौका न मिले कुछ करने का और वह जो आपके ऊपर है, वह धीरे धीरे रिस-रिस कर भीतर चला जाए

पन्द्रह मिनट जरूरी है कि आपको मौका न मिले। आपको मौका मिला तो आप उसे अस्त-व्यस्त कर देंगे। इसलिए आप अगर पन्द्रह मिनट नाच कर, बुद्धि को भूल कर, हृदयपूर्वक जीकर लौट जाते हैं, तो जो मैंने आपसे कहा है आप उसको विकृत न कर पायेंगे। आपके विकृत करने के पहले आपके हृदय तक थोड़ी-सी धाराएं उसकी पहुंच गई होंगी। वे ही धाराएं वस्तुतः काम की हैं।

फिर, जो भी मैं कह रहा हूं, वह कितना ही बौद्धिक मालूम पड़े, बौद्धिक नहीं है। कहना, अभिव्यक्ति बौद्धिक है। और उसे मैं इस भांति आपको समझाने की कोशिश करता हूं कि आपके तर्क को भी समझ में आ जाये। लेकिन जो मैं कह रहा हूँ, वह तार्किक नहीं है। **तर्क केवल माध्यम है। शब्द केवल उपाय हैं। जो मैं कह रहा हूं वह बिलकुल अतर्क्य है। और जो मैं कहा रहा हूं, वह विचार के अतीत है।** अगर मैं कहने पर ही आपको छोड़ दूं, तो आप बहुत जल्दी तोतों की तरह पंडित हो जायेंगे या पंडितों की तरह तोते बन जायेंगे। आपको सब बातें कंठस्थ हो जायेंगी और आप भी दूसरों को कह सकेंगे, बस इतना ही होगा। इसका कोई बहुत अर्थ नहीं होने वाला। मेरा अपको कोई तोता बनाने का जरा भी प्रयोजन नहीं है।

आपको पता न होगा, अगर आप दस मिनट नाच लिए, गीत गा लिए, आनंदित हो लिए, तो आप तोते नहीं बन पायेंगे। आप हल्के होंगे। आप पर जो भार पड़ा था, बुद्धि पर जोर तनाव पड़ा था, वह हल्का हो जाएगा। और तब जो सारभूत है, वह आपके भीतर रह जायगा। और जो शब्द हैं,

वे तिरोहित हो जायेंगे । **यह कीर्तन इसलिए है, ताकि मैंने जो आपसे कहा है, शब्द भूल जायें और उसका सत्य आपके साथ रह जाये। यह कीर्तन इसलिए है, ताकि मैंने जो आपसे कहा है, उसका माध्यम न पकड जाये, 'कन्टेनर' न पकड़ जाय, पर 'कन्हेंट, उसकी सार वस्तु आप में रह जाये ।**

तो मैं नहीं कहता आपसे कि जो मैं आप से कहूं, उसे आप याद रखें। कहता हूं, कृपा करके आप भूल जायें । आप उसे याद मत रखें । **जो सार्थक है, वह भीतर रह जायगा । वह आपकी जिन्दगी में कभी-कभी प्रकट होगा ।** जो गैर-सार्थक है उसे याद रखना पड़ता है । इमर्सन ने कहीं शिक्षा की परिभाषा करते वक्त कहा है कि शिक्षा वह है, जो स्कूल छोड़ने पर भूल जाती है । लेकिन फिर भी शिक्षित और अशिक्षित आदमी में एक फर्क रह जाता है । वह फर्क क्या है? वह जो सार्थक था अगर वह भीतर डूब गया, तो वही फर्क है, वही सुसंस्कार है, वही संस्कृती है।

शिक्षा तो भूल जाती है। आज कितने आपको ज्यामिति के थियोरम (सिद्धांत) याद हैं? अंग्रेज लेखक समरसेट माम ने लिखा है कि मैं लाख उपाय करूं, मुझे अंग्रेजी की पूरी वर्णमाला याद नहीं रहती । और उसकी बात मेरी समझ में पड़ी, क्योंकि मैं भी उसी परेशानी में रहा हूं———कि 'ए' से लेकर 'झेड' तक पूरी वर्णमाला याद नहीं आती, मुझे भी नहीं आती उसको फिर-फिर गिनना पड़ता है डिक्शनरी देखो, तो फिर से देखना पड़ता है कि 'एच' किसके आगे और किसके पीछे है? समरसेट माम ने लिखा है कि कितने उपाय करूं, वर्णमाला याद नहीं रहती । वर्णमाला याद आने के लिए है भी नहीं। वह भूल ही जानी चाहिए। क्योंकि जिनको वर्णमाला ही आती है, उनको फिर और कुछ याद नहीं आयेगा । वर्णमाला याद रखने की चीज नहीं, भूल जाने की चीज है । उसका काम रह जाता है, उसका उपयोग रह जाता है। वही उसका उपयोग है । शास्त्रों के साथ कठिनाई है, सिद्धान्तों के साथ कठिनाई है । शब्द याद रह जाते हैं, उपयोग बिल्कुल याद नहीं रह जाता ।

कीर्तन कराता हूं, ताकि जो मैं कहता हूं, वह आपके मस्तिष्क पर बोझ न बन जाए । आप उस बोझ से हल्के होकर लौटें, भूल ही जायें, भीतर उतर ही जायें । तो जो सार है, जो बीज है वह आपके भीतर पड़ा रह जायेगा । और किसी दिन अचानक आप पायेंगे कि उसमें अंकुर आ गये।

उसमें फूल आ गये । वे फूल, जो मैंने कहा है, उसके सत्य की खबर देंगे । और जो मैंने कहा है, अगर वही आपको याद है, तो केवल शब्द आप में दोहरते रहेंगे और सत्य से आप वंचित रह जायेंगे ।

इसलिए भी कीर्तन करवाता हूं, क्योंकि मेरा मानना है कि बुद्धि से कोई कभी परमात्मा तक नहीं पहुंचता। **सोच-सोच कर कोई कभी सत्य तक नहीं पहुंचता** । नाच कर तो कभी -कभी कुछ लोग पहुंच गये हैं, हिसाब करके कभी कोई नहीं पहुंचा । कुछ पागल तो कभी-कभी पहुंच गये हैं, लेकिन होशियार लोग नहीं पहुंच पाते । उनकी **होशियारी ही बाधा बन जाती है** । लेकिन एक अड़चन है । जो लोग पागलपन की बात करते हैं, वे होशियारी की बात नहीं करते । इसलिए होशियार आदमी उनके पास फटकते ही नहीं । जो लोग होशियारी की बात करतें हैं, वे पागलपन से बिल्कुल दूर, साफ सुथरे रहते हैं । वे पालगपन को बिल्कुल अछूत मानते हैं उनके पास पागल नहीं भटकते ।

लेकिन ध्यान रहे समझ और पागलपन का एक गहरा ताल मेल जब निर्मित होता है, तो जीवन में श्रेष्ठतम क्रांति घटित होती है । बुद्धिमानी अगर हँस न सके तो थोड़ी कम बुद्धिमानी है । बुद्धिमान अगर नाच न सके, तो थोड़ा कम बुद्धिमान है । अगर बुद्धि हल्की होकर उड़ न सके, तो पत्थर है ।

मेरी दृष्टि में जीवन इन विरोधों का एक संमग है। सोचें खूब लेकिन सोचने पर रुक न जायें । कहीं एक क्षण सोचने को एक तरफ रख दें—— वस्त्रों की तरह । नग्न हो जायें सोचने से । नाचें, कूदें, छोटे बच्चों की तरह हो जायें । **अगर आप छोटे बच्चे और बुद्धिमान दोनों के बीच कोई सेतु बना लेते हैं, तो आपने वह गोल्डन वह गोल्डन ब्रिज, स्वर्ण-सेतु बना लिया जिस पर से होकर ही सभी को जाना पड़ता है ।** अगर आप वह नहीं बना पाते, तो आप अधूरे रह जायेंगे । अगर आप केवल नाच-कूद ही सकते हैं, तो आप पागल हैं । अगर आप सिर्फ सोच ही सकते हैं, तो आप दूसरे ढंग के पागल हैं । **अगर ये दोनों आप में एक साथ संभव हैं. तो इन दोनों का मिलन एक नये तत्व को जन्म दे जाता है, जिसे प्रज्ञा कहते हैं ।**

० एक और मित्र ने पूछा है कि हमने बहुत कीर्तन देखे, लेकिन कीर्तन में एक व्यवस्था होती है, ढंग होता है । यहाँ जो होता है, बिलकुल बेढंगा

होता है। उसमें कोई व्यवस्था नहीं। कोई कैसा ही नाचता-कूदता है, कोई कैसा ही चिल्लाता है!

उनका ख्याल ठीक है। जान कर ही यह अव्यवस्था है। ऐसा कहिए कि व्यवस्था से ही यह अव्यवस्था है। यह कोई अकारण नहीं हो रहा है। **क्योंकि मेरा मानना है कि जब कोई व्यवस्था से नाचता है, तो नर्तक हो सकता है, कीर्तन करनेवाला नहीं।** व्यवस्था एक बात है। जब कोई व्यवस्था से गाता है, तो गायक हो सकता है। वह दूसरी बात है। लेकिन **जब कोई भाव से, हृदय की उमंग से, सहजता से नाचता और गाता है तब कीर्तन का जन्म होता है।** कीर्तन की कोई व्यवस्था नहीं होती।

नृत्य एक बात है और कीर्तन में नाचना बिल्कुल और बात है। कीर्तन स्पान्टेनियस, सहज-स्फूर्त होना चाहिए। जो अंतर में उदित हो रहा हो, वही होना चाहिए। फिर हाथ-पैर जैसी भी मुद्राओं में होना चाहें, उन्हें होने की स्वतंत्रता होनी चाहिए।

आपको शायद पता नहीं कि जब हम शरीर को पूरी मुक्ति दे देते हैं और भाव के साथ शरीर को भी पूरा छोड़ देते हैं और अगर यह छोड़ना पूरा हो जाए, तो **आपको समाधि की झलक पहले इससे ही मिलेगी।** क्योंकि जब शरीर पर कोई बंधन नहीं होता, तब पहली बार चेतना की सहज – अवस्था का अनुभव होता है। नियम तो बंधन है, व्यवस्था एक बंधन है। और जब आप व्यवस्था रखते हैं, तो चेतन रहना पड़ता है, पूरे वक्त होश रखना पड़ता है कि कुछ गलती तो नहीं हो रही है, कोई ताल में, पद में कहीं कोई भूल तो नहीं हो रही है। तो फिर बुद्धि काम जारी रखती है। व्यवस्था का अर्थ है कि बुद्धि मौजूद है और हृदय को मौका नहीं मिला।

यह कीर्तन हृदयपूर्वक है। तो आप अगर यहां कौन कैसा भूलचूक कर रहा है, यह देख रहे हैं तो आप गलत जगह आ गये हैं आपको किसी नर्तकी या नर्तक को देखना चाहिए। वहां भूलचूक नहीं होगी। **यहां आपको देखना चाहिए कि कौन कितना स्वाभाविक हो गया है।** और स्वाभाविक कोई हो गया है या नहीं हो गया है, इसे बाहर से देखना बड़ा मुश्किल है। यह तो खुद ही हों, तो समझ में आता है। तो बेहतर यह है कि खुद होकर ही देखें।

शरीर और भाव की एक स्वाभाविकता भी है, तब हम कुछ भी नहीं रोकते । पैर जैसा नाचना चाहते है, नाचते देते हैं। कोई नियम, कोई अनुशासन नहीं । मन जैसा उछलना चाहता है, उछलने देते हैं।

दस मिनट अपने शरीर को, अपने इस मन को सहज छोड़ कर देखें। उस सहजता में डूबते ही आपको **पहली दफे एक स्वतंत्रता अनुभव होगी,,** जो आप छोटे-से बच्चे रहे होंगे तब कभी शायद आपने उसकी झलक जानी होगी । लेकिन अब तो बहुत समय हो गया होगा, जब कभी आप छोटे बच्चे थे और किसी फूल के पास किसी तितली को पकड़ने के लिए दौड़े होंगे । तब जैसी सहजता भीतर रही होगी, वैसी सहजता एक बार फिर से पकड़िये। पकड़ते ही बीच की सारी बाधाएं गिर जाती हैं । और जब कोई **फिर से अपनी बुद्धिमानी में बच्चों जैसा हो जाता है, तो स्वर्ग की चाबी उसके हाथ में है ।**

('अमृत अध्ययन वर्तुल' प्रवचन-माला के अन्तर्गत "ताओ-उपनिषद" पर दिनांक २ अगस्त, १९७२ को भगवान श्री रजनीश द्वारा बम्बई में दिये गये प्रश्नोत्तर-प्रवचन का एक अंश ।)

आओ तुम्हें लयला बना दें

छुपाना था जिनसे उन्हें अंदाज़ है,
गली-गली गाँव-गाँव अब चर्चे हमारे हैं,
पूछते हैं मुझे यार मेरे "माना मजनूं तुम्हें"
पर वह लयला कहां, बनाया जो पालग तुम्हें
किया इशारा हमने पर शायद ही वे समझें
फिर कहा मैंने वही सूरत, वही सादगी है;
नासमझ फिर भी न समझें, कहना ही पड़ा मुझे,
लयला को देखने, मुझ मजनूं की आंखें चाहिए;
सब्र कर ऐ कबीर, पर सब्र से तौबा मेरी,
लफ्ज़ आखिर निकल ही पड़े "रजनीश" है लयला मेरी ।

—स्वामी कृष्ण कबीर

हम, आप और मुल्ला नसरुद्दीन

(भगवान श्री की चर्चाओं से संकलित झूठे लतीफे)

—मां योग क्रांति

आप जीवन से सकुशल वापस लौट जायें तो बड़ी ही असाधारण घटना है।

होनी तो चाहिए साधारण और सहज----------लेकिन होती नहीं है।

क्योंकि, जिसे हमने सहज जाना और माना है वह भी अत्यंत असहज है।

एक बार किसी प्राचीन भग्नावशेष में मुल्ला नसरुद्दीन को रात्रि बितानी पड़ी। आंधी जोरों पर थी और चारों ओर घना अंधकार छाया था। और निर्जनता वातावरण को और भी भयानक बना रही थी। एक कमरे में बिस्तरा बिछाते हुए मुल्ला ने प्रेत जैसे दीखते दरबान से पूछा: "क्या इस कमरे में कभी कोई असाधारण घटना हुई है ?"

"पिछले चालीस वर्षों से तो नहीं हुई," दरबान ने संक्षिप्त उत्तर दिया।

इतमीनान की सांस छोड़ते हुए मुल्ला ने उत्सुकतावश पूछा : "चालीस वर्ष पहले क्या हुआ था ?"

दरबान की आंखें अंधेरे में चमकने लगीं। उसने कहा :

"चालीस वर्ष पहले एक यात्री इस कमरे में रात भर सोया था और सुबह सकुशल वापिस चला गया था।"

ooo ooo

मुल्ला नसरुद्दीन लोहार की दुकान पर जाकर बोला: "मुझे एक बहुत बड़ी बाल्टी चाहिए जिसमें बहुत सा पानी आ जाए।"

लोहार ने मुल्ला को अपनी सबसे बड़ी बाल्टी निकाल कर दिखाई। मुल्ला ने उसे ठीक से जांचा-परखा। फिर भाव का मोल-तोल किया और अंत में कहा : "अच्छा ठीक है। कृपया इसे मेरे घर पहुंचा दीजिए।"

और इतना कहकर मुल्ला दरवाजे की ओर चल दिया। लेकिन फिर कुछ सोचकर वापिस आया और बोला: **"और हां जरा जल्दी भिजवाना। मेरे मकान में आग लग गई है।"**

मैं पूछता हूं कि आपके मकान में आग लगे तो आप मुल्ला नसरुद्दीन ने जो किया वही करियेगा या आपके विचार कुछ भिन्न है ?

ooo ooo

कल्पना तो कोई बुरी नहीं है पर वह बात कल्पना ही है, इतना ही तो काफी है और बुरा होना आवश्यक भी कहां है ?

"बस कल्पना करो," बोला मुल्ला नसरुद्दीन अपनी पत्नी से," कि सोना बीस रुपया तोला, गेहूं दो रुपये मन, घी एक रुपये का दो सेर, भरपेट खाना छः पैसे में, चार कमरोंवाले फ्लेट का किराया पन्द्रह रुपये माहवार, बच्चों की पढ़ाई मुक्त। मोटर पांच सौ रूपये में....."

"कहां ?" पत्नी ने आनंदित हो पूछा।

मुल्ला यह प्रश्न सुन उदास हो गया और बोला: **"अरे कहीं भी नहीं लेकिन यह कल्पना क्या बुरी है ?"**

ooo ooo

मैं जब भी आपको धर्म से प्रभावित देखता हूं तो मुल्ला नसरुद्दीन की याद बरबस ही आ जाती है।

मुल्ला नसरुद्दीन की कंजूसी से परेशान हो उसकी पत्नी उसे एक सभा में ले गयी जहां कि दान-पुण्य की बड़ी बड़ाई होने को थी। मुल्ला सभा में इतना प्रभावित हुआ की पत्नी को भी भरोसा न आया। लौटते समय में मुल्ला ने उससे कहा:" **"मैं आज की बातों से बहुत प्रसन्न हुआ हूं। दान-पुण्य से श्रेष्ठ जीवन में और कुछ भी नहीं है और मैं कल से ही दान मांगने के महत् कार्य में**

अपना सारा जीवन लगाने जा रहा हूं ।"

ooo ooo

मुल्ला नसरुद्दीन अपने बेटे को कृपाण से लड़ने की तालीम दे रहा था कि एक दोस्त ने आकर कहा "अरे नसरुद्दीन ! यह तालीम अकेली क्या करेगी ? किसी तगड़े-बड़े आदमी से पाला पड़ गया तब यह दुबला-पतला लड़का क्या करेगा ?"

"कच्चा समझते हो मुझे?" नसरुद्दीन ने हम, "साथ साथ लड़के को **तेजी से भाग कर छुप जाने की तालीम भी तो दे रहा हूं ।**

जिंदगी में शुभ-अशुभ अंधेरे और प्रकाश की तरह कटे-बटे नहीं है । कम अशुभ और ज्यादा अशुभ या कम शुभ और ज्यादा शुभ के बीच ही सदा चुनाव है।

मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी उसके घावों की मरहम पट्टी करती हुई पूछ रही थी: "तुम्हारे कहने का क्या अर्थ है कि तुमने उस आदमी को तुम्हारी ही छड़ी से तुम्हें पीटने दिया ?"

"और क्या करता ?" कराहता हुआ बोला नसरुद्दीन **"क्योंकि खुद उसकी छड़ी और भी मोटी थी !"**

ooo ooo ooo

क्या पागल होने में आपके अभी भी देर है ?

सोचें जरा ।

या कि हो ही चुके है ?

जल्दी नहीं—थोड़े धैर्य से स्वयं पर पुनः सोचें ।

आधीरात । मुल्ला नसरुद्दीन के पड़ोसी ने आखिर हारमोनियम की बेसूरी आवाज को सुनते सुनते तंग आकर खिड़की से सिर बाहर निकाल चिल्ला कर कहा: "नसरुद्दीन, अगर तुमने अपनी बेहूदी हरकत बंद नहीं की तो मैं पागल हुए बिना नहीं रहूंगा ।"

मुल्ला खिलखिलाकर हंसने लगा और बोला: **"प्यारे, अब, तो बहुत देर हो चुकी है । मुझे हारमोनियम बजाना बंद किये एक घंटे से ऊपर हो चुका है ।**

ooo ooo ooo

सभी कुछ सापेक्ष है ।
निरपेक्ष कुछ भी नहीं ।

मुल्ला नसरुद्दीन के नगर का नामी कंजूस मर गया था। उसके घर पर सैकड़ों की भीड़ इकट्ठी हो गई, शोक मनाने के लिए नहीं, वरन् यह निश्चिय-पूर्वक जानने के लिए कि वह मर गया है । जब उसका जनाजा उठने लगा तब भी किसी ने रिवाज के तौर पर भी उसकी प्रशंसा में एक भी शब्द न कहा । आखिर कुछ लोगों ने मुल्ला से अनुरोध किया और कहा: "नसरुद्दीन, तुम तो इनके परिवार को भलीभांति जानते रहे हो और इन्हें भी और लोगों की अपेक्षा अधिक जानते रहे हो। शायद तुम इनके संबंध में कोई अच्छी बात कह सको।"

मुल्ला मान गया और बहुत कुछ सोच विचार के बाद बोला: "यह मृत व्यक्ति धोखेबाज, दुष्ट, किसी का भला न करनेवाला और महा कंजूस था।" लेकिन इसके **सात भाई अभी और है, और उनकी तुलना में वह देवता था ।"**

ooo ooo ooo

कब्रस्तान का एक कर्मचारी नशा किया करता था। एक दिन उसने नशे में एक कब्र खोदनी शुरू की। खोदता गया, खोदता गया और नशा टूटा तो उसे पता चला कि शाम हो गई है और कब्र इतनी गहरी खुद गई है कि उसका उसमें से निकलना बड़ा कठिन हो गया है ।

उसने बहुत शोर मचाया लेकिन कोई सुननेवाला न था । फिर कुछ कुछ अंधेरा भी हो चला और सर्दी भी बढ़ गई। तभी मुल्ला नसरुद्दीन वहां से गुजरा। कर्मचारी ने गिड़गिड़ाकर कहा: "मुल्ला,खुदा के वास्ते मुझे बाहर निकालो मैं ठंड से मरा जा रहा हूं।"

मुल्ला ने झांक कर कब्र में देखा और गंभीरता से कहा: **"ठंड तो लगेगी ही भाई! तुम पर मिट्टी डालना भी भूल गए है ।"**

ooo ooo ooo

अंतिम दिन को जो याद रखता है वही बुद्धिमान है ।
लेकिन दूसरे के नहीं स्वयं के ।

एक आदमी जबरदस्ती मुल्ला नसरुद्दीन की पगड़ी छीनकर भाग गया।

मुल्ला ने उसका पीछा करने के बजाय सीधी कब्रस्तान की राह पकड़ी और वहीं डेरा डाल दिया। जो लोग यह सब खेल देख रहे थे उन्होंने चकित हो मुल्ला से पूछा : "नसरुद्दीन, चोर तो दूसरी तरफ भाग गया, तुम यहां क्या कर रहे हो ?"

मुल्ला ने कहा : **आखिर एक दिन वह तो यहीं आवेगा बस समझ लूंगा।**

ooo ooo ooo

सत्य स्वयं सिद्ध है।

स्व-प्रकाशवान है।

उसे किसी और प्रकाश या किसी और प्रमाण या किसी और गवाही की की कोई भी आवश्यकता नहीं है।

ooo ooo.. oo

मुल्ला नसरुद्दीन सदा ही देर से सोकर उठता था। एक दिन उसकी नींद कुछ जल्दी खुल गई, तो उसने नौकर को पुकार कर कहा : "अरे महमूद, दरवाजा खोलकर देख, सूरज निकला कि नहीं?"

सर्दियों का था मौसम। नौकर बाहर जाकर शीघ्र लौट आया और बोला : "मुल्ला, बाहर तो बड़ा अंधेरा है।"

नसरुद्दीन को बड़ा क्रोध आया। और वह बिगड़कर बोला : "अरे मूर्ख,अकल से काम ले। **यदि अंधेरा है तो दिया जलाकर क्यों नहीं देख लेता ?"**

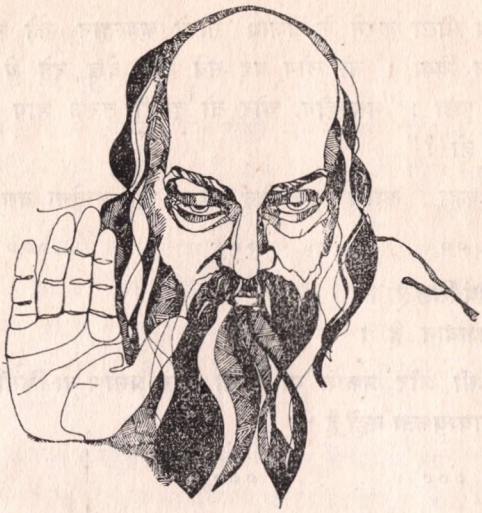

जब कभी परमात्मा लिखता है—

[भगवान श्री द्वारा साधकों को लिखे गये अमृत-पत्र]

संकलन : स्वामी राममूर्ति भारती

स्वयं को स्वीकारें

प्रिय मथुरा बाबू,

प्रेम । मन से लड़ें न ।

क्योंकि, लड़ने से मन ही बढ़ता है ।

वह विधि भी उसके विस्तार की ही है ।

और फिर मन से लड़ने से जीत तो कभी होती ही नहीं है ।

वह भी पराजय का ही सुगम सूत्र है ।

जो स्वयं से लड़ा, वह हारा ।

क्योंकि, वैसे जीत असंभव है ।

स्वयं से लड़ना स्वयं को स्व-विरोधी खंड़ों में विभाजित करना है ।

और दोनों ओर से स्वयं को ही लड़ना पड़ता है ।

ऐसे जीवन-उर्जा रुग्ण ही होती है ।

और सीजोफ्रेनिक भी ।

नहीं–लड़ें नहीं, **वरन् स्वयं को स्वीकारें। स्वयं के साथ रहने को राजी हों।** जो है–है।

उससे भागें नहीं ।

उसे बदलने का प्रयास भी न करें ।

उसमें जियें ।

और तब जीवन–उर्जा अपनी अखंडता में प्रकट होती है – स्वस्थ, समाहित और सशक्त ।

और फिर रुपान्तरण घटित होता है ।

स्वस्थ, अखंड और सशक्त जीवन–उर्जा की छाया की भाँति ।

वह प्रयास नहीं, परिणाम है ।

वह कर्म नहीं, घटना है ।

वह प्रभु–प्रसाद है ।

रजनीश के प्रणाम

१२–११–७०

[प्रति : स्वामी आनंद मैत्रेय (श्री मथुराप्रसाद मिश्र,) पटना]

ooo ooo ooo

ईश्वर की पुकार से भर गये प्राणों में--संन्यास का अवतरण

प्रिय धर्मज्योति,

प्रेम । **संन्यास उस चित्त में ही अवतरित होता है, जिसके लिए कि ईश्वर ही सब कुछ है ।**

जहां ईश्वर सब-कुछ है, वहां संसार अपने आप ही कुछ नहीं हो जाता है।

किसी फकीर के पास एक कंबल था ।

उसे किसी ने चुरा लिया ।

फकीर उठा और पास के थाने में जाकर चोरी की रिपोर्ट लिखवाई । उसने लिखवाया कि उसका तकिया, उसका गद्दा, उसका छाता, उसका पाजामा, उसका कोट और उसी तरह की बहुत- सी चीजें चोरी चली गई हैं।

चोर भी उत्सुकतावश पीछे-पीछे थाने चला आया था ।

सूची की इतनी लम्बी-चौड़ी रूपरेखा देखकर वह मारे क्रोध के प्रकट हो गया और थानेदार के सामने कम्बल फेंक कर बोला : "बस यही एक सड़ा-गला कम्बल था – इसके बदले इसने संसार-भर की चीजें लिखा डाली हैं ।"

फकीर ने कंबल उठाकर कहा : "आह ! बस यही तो मेरा संसार है!"

फकीर कम्बल उठाकर चलने को उत्सुक हुआ तो थानेदार ने उसे रोका और कहा कि रिपोर्ट में झूठी चीजें क्यों लिखायी ?

वह फकीर बोला–"नहीं–झूठ एक शद्व भी नहीं लिखाया है । देखिये ! यही कम्बल मेरे लिए सब कुछ है–यही मेरा तकिया, यही गद्दा, यही छाता, यही पाजामा, यही कोट ।"

बेशक उसकी बात ठीक ही थी ।

जिस दिन ईश्वर भी ऐसे ही सब-कुछ हो जाता है–ताकिया, गद्दा, छाता, पाजामा, कोट–उसी दिन संन्यास का अलौकिक फूल जीवन में खिलता है ।

रजनीश के प्रणाम

१९–११–७०

(प्रति : मा धर्मज्योति)

आत्मीय निकटता का रहस्य--सूत्र

प्रिय भगवती,

प्रेम । तुम्हें अनेक प्रकार के कष्टों में डालता हूँ, ताकि तुम्हें निखार सकूँ । क्योंकि, जब सुख व्यर्थ की धूलि से ढँक जाते हैं, तब पीड़ा निखारती है । तुम्हें सब भांति नया करना है ।

कठिन है वह कार्य, क्योंकि नये जन्म की प्रसव-पीड़ा अनिवार्य है ।

कभी तुम्हें दूर भी रख सकता हूं–जान कर ही ।

ताकि निकट ला सकूँ ।

क्योंकि शरीर की निकटता में अक्सर आत्मीय निकटता विस्मृत हो जाती है ।

और शरीर की दूरी का बोध प्राणों को निकट ले आता है ।

जीवन अत्यंत अद्भुत और स्व-विरोधी नियमों का ताना-बाना है ।

आस्कर बाइल्ड ने कहा है : जीवन में दो दुख है– एक कि जिसे चाहा है वह न मिले और दूसरा कि वह मिल जाये ।

और मैं कहता हूं कि दुसरा दुख निश्चिय ही पहले से गहन और गंभीर है।

सच तो यह है कि दूसरे के समक्ष पहले को दुख कहना ही शायद ठीक नहीं है।

पूछा जा सकता है: फिर सुख कहां है ?
आस्कर बाइल्ड द्वारा गिनाये गये **दोनों दुखों के मध्य में।**
यद्यपि मन मध्य को कभी भी चुनना नहीं चाहता है।
पर मैं तुम्हें निरंतर इसी को चुनने की शिक्षा दे रहा हूं।
जानना है सुख तो चुनो मध्य।
क्योंकि, मध्य ही स्वर्ण-पथ है।
लेकिन मध्य का अर्थ क्या है ?

मध्य का अर्थ है जिसे चाहा है, वह न भी मिले और मिला हुआ हो, या फिर मिले भी तो भी न मिला बना रहे।

रजनीश के प्रणाम
११-१-७१

(प्रति : मा योग भगवती, बम्बई)

जीवन--रहस्य

प्यारी गुणा,

प्रेम। एक दिन जेन फकीर होशिन ने अपने शिष्यों को एक कहानी सुनायी: "तोफुकु (Tofuku) बूढ़ा हो गया था। उसने एक दिन अपने शिष्यों से कहा :, "मैं एक वर्ष से ज्यादा तुम्हारे बीच नहीं रहूंगा। **इसलिए, नासमझो, अब तुम सब मेरी बातें ठीक से ध्यान में रख लेना।**" लेकिन, शिष्यों नें सोचा कि वह मजाक कर रहा है। एक वर्ष बीत गया तो तोफुकु ने कहा : "अब आखिरी क्षण निकट है। आज रात्रि जब बर्फ गिरनी बंद हो जायेगी, तो मैं तुमसे बिदा ले लूंगा।" लेकिन इस पर शिष्य बहुत हँसे, क्योंकि आकाश पूरी तरह साफ था और बर्फ का कहीं पता ही नहीं था। उन्होंने सोचा कि मालूम होता है कि बूढ़े तोफुकु का दिमाग अब ठीक से काम नहीं करता है। लेकिन, अर्ध-रात्रि के पूर्व ही बर्फ पड़ने लगी ! पर शिष्यों ने सोचा कि यह मात्र संयोग की बात है! और सुबह से पूर्व ही बर्फ

बन्द भी हो गयी, लेकिन तब तक शिष्य तोफुकु की बात को रात के स्वप्नों में दबा चुके थे ! सूर्य निकला और रात्रि पड़ी बर्फ पर धूप चमकने लगी। लेकिन बूढ़े तोफुकु को उसको कक्ष से न निकलते देख शिष्य कक्ष के भीतर गये। लेकिन वहां तो सिर्फ शरीर पड़ा था और तोफुकु जा चुका था !"

होशिन (Hoshin) के शिष्यों को इस कहानी पर भरोसा नहीं आया !

किसी एक ने मजाक में होशिन से पूछा । क्या आप भी ऐसी भविष्य-वाणी कर सकते हैं ?

होशिन ने कहा, मेरे लिए तो वर्ष भर भी कहां बचा है ! बस, सात दिन ही शेष हैं–**इसलिए नासमझो, जो मैं तुमसे कहूँ उसे ठीक से ध्यान में रख लेना।**

लेकिन कौन उसका भरोसा करता ? शिष्य हँसे और बात आयी–गयी हो गई !

और सात दिन बाद जब होशिन ने उन्हें अपने कक्ष में बुलाया तो सात दिन पहले हुई बात का स्मरण ही नहीं था ।

होशिन ने उनसे कहा : "यह उचित है कि परंपरानुसार मैं एक विदा गीत लिखूं–लेकिन न तो मैं कोई कवि हूँ और न ही मेरे हस्ताक्षर अच्छे हैं, फिर भी मैं बोलता हूं और तुममें से कोई लिख ले ।"

शिष्यों ने समझा कि निश्चित ही वह मजाक कर रहा है, लेकिन मजाक ही मजाक में उनमें से एक लिखने को भी बैठ गया ।

होशिन ने लिखवाया :: "मैं आया आलोक से,
और, लौटता हूँ पुनः आलोक को।
लेकिन, क्या है इसका अर्थ ?"

लेकिन चौपाई में परंपरानुसार एक पंक्ति कम थी, इसलिए शिष्यों ने हंसते हुए भूल निकाली और कहा : गुरुदेव, एक पंति अभी कम है ।"

होशिन हंसा और फिर उसने सिंह जैसी गर्जना की और उस गर्जना से ही चौथी पंक्ति पूरी कर वह जा चुका था ।

और क्या मैं तुझे बताऊं कि इसका अर्थ क्या है?

रजनीश के प्रणाम
१३–१–७१

प्रभु ऐसे ही बुलाता है....

प्यारी दर्शन,

प्रेम । तेरा पत्र मिला है ।

उसे पाकर अति आनंदित हूं ।

इसलिए भी कि तूने अनलिखा—कोरा कागज भेजा है ।

लेकिन, मैंने उसमें वह सब पढ़ लिया है, जो कि तूने नहीं लिखा है लेकिन लिखना चाहती थी ।

शब्द वैसे भी क्या कह पाते हैं ?

और लिखकर भी तो जो लिखना था, वह सदा अनलिखा ही रह जाता है ।

इसलिए तेरा मौन-पत्र बहुत प्यारा है ।

वैसे जब तू मिलने आती है तो चुप ही रहती है ।

लेकिन तेरी आंखें सब कह देती हैं।

और तेरा मौन भी ।

किसी गहरी प्यास ने तुझे स्पर्श किया है।

किसी अज्ञात तट ने तुझे पुकारा है।

प्रभु जब बुलाता है तो ऐसे ही बुलाता है।

लेकिन कब-तक तट पर खड़े रहना है?

देख—सूरज निकल आया है और हवायें नाव के पालों को उड़ाने को कैसी आतुर हैं ?

रजनीश के प्रणाम

७—१२—६६

शब्द, ओंठ, हृदय और निशब्द अस्तित्व—

प्यारी दर्शन,

प्रेम । तेरा पत्र पाकर कितना आनंदित हूं ? कैसे कहूं ?

उसकी प्रतीक्षा रोज ही करता था ।

पर कितना छोटा-सा पत्र लिखा है?

फिर भी जो तूने छोड़ दिया है, वह भी मैंने पढ़ लिया है !

पंक्तियों के बीच में भी तो सदा बहुत कुछ छिपा रहता है!

या कि नहीं छिपा रहता है ?

शब्द कभी कहते हैं, पर अधिकतर तो छिपाते ही हैं।

शब्द की सीमा है ।

और जीवन में जो भी श्रेष्ठ है, सत्य है, सुन्दर है, वह सभी उस सीमा के बाहर है ।

प्रेम भी । प्रार्थना भी । परमात्मा भी ।

शब्द हैं मृत और इसलिए जीवन सदा ही निशब्द है।

लेकिन मृत में भी जीवन्त का प्रतिफलन हो सकता है । वह भी जीवन का दर्पण तो बन ही सकता है ।

और ऐसा जब भी होता है, तभी काव्य का जन्म हो जाता है ।

फिर शब्द निशब्द के इंगित हो जाते हैं।

शब्द का तू उपयोग कम करती है । अनेक बार तो वे तेरे ओठों के कंपन मात्र होकर रह जाते हैं।

और बहुत कुछ तो तेरे ओठों तक भी नहीं आ पाता है । शायद हृदय की धड़कनों में ही खो जाता है ।

और ऐसी तरंगों का भी मैंने अनुभव किया है, जिन्हें कि तेरा हृदय भी नहीं जान पाता है । वे तेरे अस्तित्व के मूल-स्रोत की ही तरंगें हैं ।

एक कवि है तेरे भीतर—और वह जन्म लेने को बहुत आकुल-आतुर है। और कौन जानता है कि शायद उसके लिए मुझे दाई बनाना पड़े ?

शेष शुभ ।

वहां सबको प्रणाम ।

मैं बम्बई आता हूं तब किसी दिन दोपहर आकर मिल जाना ।

रजनीश के प्रणाम

(प्रतिःसुश्री दर्शन वालिया, बम्बई) २५–११–६६

श्रद्धांजलि

मा योग भगवती : एक याद

चंद्रकान्त मकीम

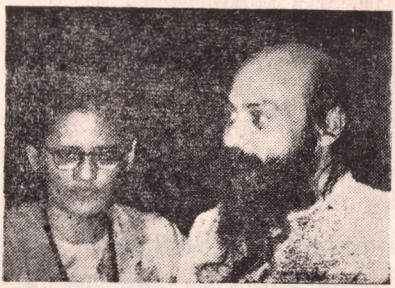

जीवन में दो ही चीजें पाने योग्य हैं
सत्य और प्रेम
जो सत्य पा लेता है, वह प्रेम में प्रतिष्ठित हो जाता है
और जिसका प्रेम के मंदिर में प्रवेश हो जाता है
वह सत्य के समक्ष खड़ा हो जाता है।

भगवान श्री की यह बात मा योग भगवती के संदर्भ में कितनी सच है!

क्योंकि भगवती थीं साक्षात् प्रेम-मूर्ति. भगवती का परिचय केवल एक ही शब्द में देना हो तो वह शब्द है—प्रेम

भगवती का सान्निध्य –सत्संग–संसर्ग जिसने भी पाया उस को आज भी उनकी करुणामयी मुखाकृति, प्रेममयी आंखें और स्नेहयुक्त व्यवहार याद आ जाता है।

भगवती शब्द में ही कितनी भगवत्ता है! कितना माधुर्य है! संन्यास लेने के वक्त, उनका नामकरण करने के क्षण पर वही नाम उनको फिर से दिया गया यह क्या कम सौभाग्य की बात है?

चाहे कुटुंब के लोग रहे हों या केन्द्र के मित्र, सबके लिए भगवती के हृदय में प्रेम का सागर था। जहांतक भगवान श्री की बात है निम्न घटना से हमें ख्याल आयेगा–कि वह प्रभु के चरणों की आवाज सुनने के लिए, कितनी आकुल थीं, उनके प्रेम को पाने के लिए कितनी प्यासी थीं, उनकी आहट सुनने के लिए कितनी आतुर थीं!

एक दिन की बात है, कुछ कारण से भगवान श्री ने दो शब्द कहे होंगे। दूसरे दिन निवास स्थान पर जाके भगवती उनके चरणों में पत्र-पुष्प चढ़ा आईं—

पत्र में लिखा था—गुरु शिष्यपर आक्रोश अभिव्यक्त करें यह तो ठीक है। लेकिन यह आक्रोश अकारण नहीं था। मैं चाहती हूं ऐसा भी दिन भी आये जब मेरे प्रति आप अकारण ही आक्रोश प्रगट –करें –!

भगवती के मन में सबके प्रति इतनी भक्ति थी कि अपनी नौकरी से सबको ऋण ले-लेकर दिया, लेकिन खुद ट्रेन से गिर गईं तब न तो खुद के पास धन था न ऋण लेने की क्षमता—इसीलिए तो भगवती को प्रेम-सागर कहने के लिए भी मन राजी नहीं होता है क्यों कि सागर में भी ज्वार-भाटा आता रहता है।

कराची में जन्म लिया। मैट्रिक तक की शिक्षा वहीं हुई–पन्द्रह साल तक आर. एस. एस. की प्रवृत्ति में सक्रिय रहीं। बम्बई आके एम. ए. किया। सामाजिक प्रवृत्ति से आगे बढ़कर अध्यात्म में रुचि लेनी शुरू की—काफी समय तक चिन्मय मिशन के संपर्क में रहीं–लेकिन प्यास पूरी नहीं हुई—

उन दिनों बम्बई में भगवान श्री का कार्य शुरू हो रहा था। भगवती एक प्रवचन में आ पहुंची। लेकिन यह प्रवचन उनके लिए मात्र सुनना नहीं रहा—श्रवण हो गया।

प्रवचन में जो कली फूटी थी वह संन्यास के फूल के रूप में मनाली में खिल गई। आज वह फूल नहीं रहा लेकिन उसकी अनुभूती हमें आज भी कार्य को तीव्र गति से आगे ले जाने की प्रेरणा– दे रही है।

शल्यक्रिया थोड़ी देर में होनेवाली है! पास में कोई भी उपस्थित नहीं है! अंतिम समय कबीर पहुंचे हैं! लेकिन भगवती कहती हैं,

कबीर, क्या जरूरत है? इतनी तकलीफ क्यों?

तू मौन में है लेकिन मैं जानती हूं तू मौन में बात करना सीख गया है।

छोटी सी बात है।

घर जाओ।

फिर मिलेंगे .....!

उस दिन कबीर तो मौन में था लेकिन किसे पता भगवती भी सदा के लिए मौन होना चाहती थीं ——

शल्यक्रिया कराने आगे बढ़ी और जाते जाते आसपास के बीमारों को अपन

आखरी सामान (संतरा-मुसंबी) बांटती गईं——डॉक्टर तो हड्डी बदलने वाला था लेकिन हमें क्या पता कि भगवती अपने को पूरा बदल लेना चाहती थी –

उन दिनों में वह कहती भी थीं ——

अब क्या शेष रहा ? बाकी था वह भी ईश्वरबाबू ने टेप सुना-सुनाकर और भगवान श्री ने गुरू पुर्णिमा के शुभ अवसर अपने आसन से नीचे उतरकर अपने कर कमलों द्वारा श्रीफल भेंट करके पूरा कर दिया– उस दिन मुझे जो प्रेम मिला शायद कभी किसी शबरी, कभी किसी सुदामा को मिला होगा—

जब हम लोगों को समाचार मिला भगवती दृश्य जगत से खो गईं तो मन मानने को राजी नहीं हुआ और मन राजी भी कैसे होता ?

यह बात जब लिख रहा हूं तो एक घटना स्मरण में आ जाती है जिसे लिखे बिना भगवती का व्यक्तित्व ही अव्यक्त रह जाता है—

आबू शिविर की बात है–भगवान श्री की आभा में पूरा पर्वत विभोर हो उठा था। उनकी गंध से सारा क्षेत्र सदियों तक के लिए सुवासित हो चुका था उन्हें मिलने लोग दूरदूर से आ रहे थे–लेकिन कई लोग बिना मिले उदास लौट रहे थे, भगवती को खबर मिली। दौड़ के निवास स्थान पर पहुंची और चिल्लाकर बोली—

हमारा क्या गुनाह है ? कम से कम शिविर में तो साधक को मिलने दो। सुदामा दुःखी रहा होगा सुदामा पुरी में लेकिन वह भी जब द्वारिका पहुंचा तो मुरली मनोहर—सब स्नेह मिलन छोड़ के दौड़ पड़ा ! गले से गला लगाया और सुदामा को इतना तृप्त किया कि वापस जाने पर घर भी भूल गया—

भक्त और भगवान श्री के बोच में भगवती ने जितना प्रेम पूर्ण भाव से काम किया था शायद ही किसी ने किया हो। इसीलिए तो भगवती जब पिछले महींनों में बीमार रहीं तो एक दिन खुद भगवान श्री बोल उठे--भगवती के बिना पूरा वूडलैन्ड उदास लगता है।

एक दिन शाम को सूर्य ढल रहा था। हम लोग बगीचे में बैठे थे। सामने हरियाली थी। रोड़ों और नन्ही चट्टानों के बीच किलकती-उछलती नदी बहती थी तब भगवती ने एक कहानी सुनाई थी जो हमारे बीच की आखरी बात रही होगी –

एक मानवी ने दूसरे से कहा —

"बहुत समय पहले समुद्र में ज्वार आया था। उस समय मैंने समुद्र तट पर घास के तिनकों से लिखा था—उसे पढ़ने के लिए लोग आज भी खड़े हैं।"

दूसरे ने कहा–"मैंने भी समुद्र की रेतपर भाटा आने पर लिखा था–– लेकिन महासागर की लहरों ने उसे मिटा दिया। तुम मुझे बताओ तुमने क्या लिखा था ?"

पहले ने जवाब दिया––"मैंने लिखा था, जो सनातन है वह मैं हूं। लेकिन आपने क्या लिखा था ?"

दूसरे ने कहा– "मैंने लिखा था– मैं महासागर की बूंद हूं।"

यह कहानी सुनते समय किसको मालूम था कि वह निकट भविष्य में होनेवाली घटना का संकेत ही था, जब किसी निस्सीम महासागर की गहन और विशाल ऊर्मि हमेशा–हमेशा के लिए ठिठक कर खड़ी हो जाएगी !

समाचार-संक्षेप

दिसम्बर साधना शिबिर जो कि आनंदशीला आश्रम, बम्बई में होनेवाला था फरवरी–७३ में होने की संभावना है।

* * *

दिनांक २७, २८, २९, ३० नवम्बर व १ दिसम्बर शामको सात बजे और २५, २६ नवम्बर को सुबह ८–३० बजे भगवान श्री अमृत-अध्ययन वर्तुल के अन्तर्गत लाओत्से के वचन पर प्रवचन करेंगे।

* * *

११ दिसम्बर, भगवान श्री के जन्मदिन के अवसर पर सुबह ८–३० से १०–०० बजे तक भगवान श्री की उपस्थिति में वुडलैंडस् पर मौन-ध्यान का कार्यक्रम रखा गया है।

* * *

दिनांक – १०।१२।७२ से २७।१२।७२ तक हॉकी ग्राउन्ड, डी रोड, चर्चगेट पर भगवान श्री "गीता ज्ञान यज्ञ" के अंतर्गत ग्यारहवें अध्याय पर प्रवचन करेंगे।

* * *

ध्यान में गहरे गये साधक भगवान श्री के आशिष व संदेश लेकर विदेश यात्रा पर निकल पडे हैं। स्वामी कृष्ण सरस्वती के नैरोबी (आफ्रिका) प्रस्थान के बाद मा कृष्ण करुणा "समर्पण" आश्रम, न्यूयोर्क के लिए २२ नवम्बर-रात्रि को रवाना हो चूकी हैं। वे वहाँ उप-कुलपति के पद पर नियुक्त की गई हैं।

मुद्रक प्रकाशक : ईश्वरलाल एन. शाह, जीवन जागृति केन्द्र, ३१, इजराइल मोहल्ला, भगवान भुवन, मस्जिद बंदर रोड, बम्बई-९ मुद्रणस्थान : स्टेट्स पोपल प्रेस, बम्बई १

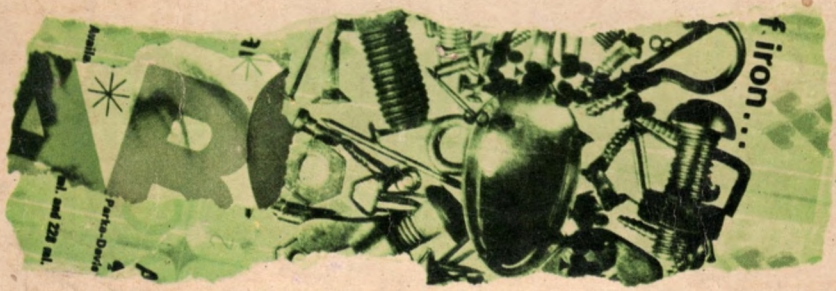

Good printing. Inviting. Communicative. Inspiring. Like religion—an experience.

selprint

249-251 A to Z Industrial Estate ☐ Fergusson Road ☐ Lower Parel ☐ Bombay 13. BC ☐ Phone : 370692